श्व दर्शन

बरमा

के

कुछ लेख

१—सागौन के वन

२—शान-जाति

३—बरमा की सैर

कार्यालय — प्रयाग

कता-

और

५—

चा।

हन-

—गांव

पर

खित

ंगाल,

केरल,

१४—

ावाड़,

२२—

जमेर,

, ३१—

२७—उदयपुर, २८—बूंदी, २९—भरतपुर, ... ग्वालियर, ३२—इन्दौर, ३३—रीवाँ, ३४—काश्मीर, ३५—नैपाल, ३६—भूटान, ३७—शिकम, ३८—गढ़वाल, ३९—अवध, ४०—संयुक्तप्रान्त, ४१—पांडिचेरी, ४२—अंडमान, निकोबार, लंका द्वीप, मालद्वीप।

एशिया—१—जापान, २—चीन, ३—कोरिया, ४—मंचूरिया, ५—मंगोलिया, ६—चीनी तुर्किस्तान, ७—तिब्बत, ८—साइबेरिया, ९—रूसी तुर्किस्तान, १०—जार्जिया, ११—आर्मेनिया, १२—टर्की १३—सिरिया, १४—पेलेस्टाइन, १५—इराक़, १६—अरब, १७—ईरान, १८—मलय प्रायद्वीप और सिंगापुर, १९—स्याम, २०—जावा, २१—बोर्नियो, २२—फिलीपाइन द्वीपसमूह, २३—अफ़गानिस्तान, २४—किरगीज प्रजातन्त्र।

योरुप—१—आयरलैंड, २—ब्रिटेन, ३—फ्रांस, ४—हालैंड, ५—बेल्जियम, ६—डेनमार्क, ७—नार्वे ८—स्वीडन, ९—आइसलैंड, १०—फ़िनलंड, ११—रूस, १२—यूक्रेन, १३—पोलैंड, १४—रूमानिया, १५—बल्गेरिया, १६—लिथुएनिया, लैटविया और एस्थोनिया,

सितम्बर १९३९] # देश-दर्शन [आश्विन १९९६

(पुस्तकाकार सचित्र मासिक)

संख्या ४] बरमा [वर्ष १

सम्पादक

पं० रामनारायण मिश्र, बी० ए०

प्रकाशक

भूगोल-कार्यालय, इलाहाबाद

Annual Subs. Rs. 4/- वार्षिक मूल्य ४)
Foreign Rs. 6/- विदेश में ६)
Single copy As. -/6- एक प्रति ।=)

विषय-सूची

स्थिति

कुछ समय पहले बरमा हमारे देश का ही अंग था। अब यह भारतवर्ष से अलग कर दिया गया है। फिर भी हिन्दुस्तान के अक्सर नक़शों में बरमा भी मिला हुआ मिलेगा। बरमा हमारे देश के दक्षिण-पूर्व में स्थित है। यदि हम आसाम प्रान्त से अधिक आगे बढ़ें और मनीपुर राज्य की पहाड़ियों के उस पार जावें तो हम बरमा में पहुँच जावेंगे। कुछ लोग इसी रास्ते से बरमा को जाते हैं। लेकिन यह रास्ता कुछ कठिन है। इधर की पहाड़ियाँ जंगलों से ढकी हैं। नदियों में वर्षा होने पर अचानक बाढ़ आ जाती है। इसलिये अधिकतर लोग कलकत्ते में जहाज़ पर सवार होते हैं और दो तीन दिन के सफर के बाद बरमा के रंगून बन्दरगाह में उतर पड़ते हैं। बरमा के पश्चिम में बंगाल की खाड़ी है। इसके दक्षिण में मर्तबान की खाड़ी है। बरमा के पूर्व में चीन और स्याम देश हैं। इन देशों और बरमा के बीच मेंभी जंगलों से ढकी हुई पहाड़ियां हैं। बरमा का आकार बड़ा विलक्षण है। इसकी सूरत एक लम्बी पूँछ वाली चिड़िया से मिलती है जिसकी चोंच उत्तर की ओर पूँछ दक्षिण की ओर हो।

बरमा का उत्तरी भाग उन्हीं अक्षांशों में है जिनमें हमारा संयुक्त प्रान्त है। दक्षिणी भाग अधिक दक्षिण में

है। बरमा की अधिक से अधिक लम्बाई उत्तर से दक्षिण की ओर लगभग १५०० मील है। जितना दूर कलकत्ते से लाहौर है। प्रायः उतनी ही दूरी बरमा के उत्तरी और दक्षिणी सिरे के बीच में है। यदि हम एक बैलगाड़ी से सीधी रेखा में बरमा का उत्तर से दक्षिण तक सफर कर सकें और हमारी बैलगाड़ी एक दिन में १५ मील चले तो हमको इस यात्रा में ८० दिन लग जायंगे। इसी चाल से यदि बर्मा के सब से चौड़े भाग में पश्चिम से पूर्व को चलें तो हमको ४० दिन लग जायँगे। बरमा के समुद्र-तट के पास पास चलें तो बरमा की इस तटीय यात्रा में ६० दिन लग जायँगे। दक्षिणी तंग हिस्से की चौड़ाई इतनी कम (७५ मील) है कि इसको पार करने में हमको ५ दिन से अधिक न लगेंगे। बरमा देश बहुत ऊँचा-नीचा है। इस देश में इस प्रकार सब कहीं बैलगाड़ी से सफर करना सम्भव नहीं है।

बरमा का क्षेत्रफल लगभग २,६२,७३२ वर्गमील है। जो हमारे संयुक्त प्रान्त से प्रायः दुगुना है। लेकिन इसकी जन-संख्या केवल १ करोड़ ३० लाख है जो हमारे संयुक्त प्रान्त की एक तिहाई है।

सूचना

बरमा तीन प्राकृतिक भागों में बटा हुआ है :—

१—अराकान योमा (बरमी भाषा में योमा पर्वत या रीढ़ को कहते हैं) और इसके साथ की पहाड़ियां बहुत पुरानी हैं। यह पहाड़ियां बरमा में हाथ की अंगुलियों की तरह उत्तर से दक्षिण को चली गई हैं। आराकान योमा की पहाड़ियां बहुत पुरानी हैं। इन पहाणियों और बंगाल की खाड़ी के बीच में बहुत ही तंग तटीय मैदान है। अराकान की पहाड़ियाँ बहुत ऊँची नहीं हैं। इनके सबसे ऊँचे भाग की उँचाई केवल १०,००० फुट है। यह पहाड़ियां बरमा और हिन्दुस्तान के बीच में रुकावट डालती है। इनमें कई प्रकार के खनिज हैं जो इस समय निकाले नहीं जा रहे हैं। अराकान योमा के अधिकतर भागों में अच्छी ज़मीन है। जहां कहीं जंगल की सफाई हो गई है वहां पर अच्छी खेती होती है। अराकान का पश्चिमी तट बहुत पथरीला और भयानक है। यहाँ जहाज़ आसानी से नहीं ठहर सकते हैं। इसके ऊपर एक दम ऊँची सपाट पहाड़ियाँ उठी हुई हैं।

२—शान-पठार बरमा का प्रायः समस्त पूर्वी भाग घेरे हुए है। दक्षिण की ओर यह टनासिरम तक फैला

हुआ है जहां टीन बहुत पाई जाती है। यह बरमा का सबसे अधिक पुराना भाग है। घिसते घिसते यहाँ के टीले बहुत छोटे रह गये हैं। शान–पठार की औसत ऊँचाई ३००० फुट से अधिक नहीं है। शान–पठार की चूने की चट्टानों के ऊपर लाल मिट्टी का बहुत ही पतला परत बिछा हुआ है। इस मिट्टी से चूना एक दम बहकर निकल गया है।

३—अराकान योमा और शान पठार के बीच में बरमा का मध्यवर्ती बेसिन (प्रवाह प्रदेश) है। कहते हैं पहले यहां एक खाड़ी थी जो दक्षिण की ओर खुली हुई थी। इसी में होकर बरमा की सबसे बड़ी नदी इरा-वदी और उसकी सहायक नदियां बहती हैं। यह प्रदेश बहुत ही नीचा है। इसमें बारीक कछारी मिट्टी की मोटी तहें बिछी हुई हैं। इसमें कुछ छोटी पहाड़ियाँ भी हैं जो उत्तर से दक्षिण की ओर चली गई हैं। पीगू योमा इसमें प्रधान है। यह निचले देश के दक्षिणी भाग में स्थित है। इसके पूर्व में सिटांग नदी है। इसी प्रदेश में पुराने समय के कुछ शान्त ज्वालामुखी पर्वत हैं।

नदियां

बरमा में हाथ की अँगुलियों की तरह पहाड़ियां उत्तर

से दक्षिण को चली गई हैं। बरमा की नदियां इन्हीं पहाड़ियों के बीच घिरी हुई उत्तर से दक्षिण बहती है। बरमा की सबसे बड़ी नदी इरावदी है। इस नदी का निचला मार्ग अराकान योमा और पूगू-योमा के बीच स्थित है। इसका ऊपरी भाग अराकान योमा और शान पठार के बीच में है। इस ऊपरी भाग में अराकान योमा से निकल कर चिंडविन नदी इरावदी में आकर मिल जाती है। इरावदी बरमा की सबसे बड़ी नदी है। यह बहुत चौड़ी और गहरी है। इसके मुहाने से लेकर भामो तक इसमें छोटे छोटे जहाज़ चल सकते हैं। भामो के ऊपर नदी उथली और तेज़ है। इस भाग में नाव चलाना कठिन है। निचले भाग में इरावदी नदी कई मील चौड़ी हो जाती है। इसकी कई शाखायें हैं। इन शाखाओं के बीच में कांप के कई छोटे छोटे द्वीप बन गये हैं। यह द्वीप जंगलों से घिरे हुये हैं। इनमें चीते और दूसरे जंगली जानवर रहते हैं।

पोकोको नगर के पास इरावदी में चिंडविन इरावदी में मिलती है। यह कम चौड़ी तेज़ और उथली है। इसमें कुछ ही दूर तक नावें चल सकती हैं। लेकिन लट्ठे बहाने

के लिये चिंडविन की तेज़ धारा बड़ी अच्छी है। इरावदी नदी का ऊपरी भाग पीगू योमा और शान-पठार के बीच में घिरा हुआ है। दक्षिण की ओर पीगू योमा और शान पठार के बीच में घिरी हुई बरमा की अधिक छोटी दूसरी नदी सिटांग है। यह नदी भी नाव चलाने के लिये अच्छी नहीं है। शान-पठार के बीच में एक दरार है। इसी में होकर बरमा की दूसरी बड़ी नदी साल्वीन बहती है। जहां पर सालवीन नदी समुद्र में गिरती है। वहीं इसके मुहाने पर बरमा का मौलमीन बन्दरगाह बन गया है।

इन बड़ी नदियों के अतिरिक्त बरमा में कई छोटी छोटी नदियां बहती हैं। ये पहाड़ी भागों में उछलती कूदती हुई बहुत ही तेज़ बहती हैं। ये नाव चलाने योग्य नहीं हैं। लेकिन कुछ छोटी नदियां लकड़ी और लट्ठा बहाने के काम आती हैं।

जलवायु

बरमा का बहुत बड़ा भाग उष्ण कटिबन्ध में स्थित है। कर्क रेखा इस देश को दो हिसों में बांटती है। निचले भाग प्रायः साल भर गरम रहते हैं। यहाँ के रहने वाले बहुत हलके कपड़े पहनते हैं। पठारी और पहाड़ी

भाग ऊँचाई के कारण कुछ शीतल रहते हैं। ऊँचाई पर रहने वाले लोग आग तापते हैं। समुद्र के किनारे वाले भागों के तापक्रम में अधिक अन्तर नहीं पड़ता है। वे कुछ समशीतोष्ण रहते हैं।

देश दर्शन

बरमा में भारतवर्ष के दूसरे भागों की तरह तीन प्रधान ऋतु हैं। कार्तिक (नवम्बर) से आधे माघ (फर्वरी) तक शीत काल रहता है। फाल्गुन (फर्वरी) के अन्त से ज्येष्ठ (मई के अन्त) तक ग्रीष्म ऋतु रहती है। ज्येष्ठ से आश्विन (अक्टूबर) तक वर्षा होती है। गरमी की ऋतु उत्तरी हिन्दुस्तान से कुछ कम गरम होती है। वर्षा हो जाने से यह गरम और भी कम हो जाती है। लेकिन हवा के नम रहने से यह गरमी असह्य हो जाती है। हिन्दुस्तान के दूसरे भागों की तरह बरमा में भी मौसम मौसम में हवाओं की दिशा बदलती है। गरमी की ऋतु में समुद्र की अपेक्षा स्थल का तापक्रम अधिक हो जाता है। यहां की हवा अधिक हलकी हो जाती है। समुद्र कुछ दक्षिण-पूर्व से भारी हवा इसका स्थान लेने आती है। समुद्र से आने वाली हवा में भाप से भरी रहती है। यही भाप से भरी हुई हवा बरमा के तट पर पहुँचने पर प्रबल वर्षा कर देती है। इस हवा के आते ही वर्षा

ऋतु आरम्भ हो जाती है। बरमा के किनारे वाले और उत्तरी पहाड़ों पर साल में लगभग २०० इंच वर्षा होती है। प्रोम और मांडले के बीच में इरावदी की घाटी प्रायः सब ओर से पहाड़ों से घिरी हुई है। पहाड़ियों के ऊपर से इस घाटी में उतरने वाली हवाएँ प्रायः खुश्क हो जाती हैं। इसी से इस भाग में २० इंच से अधिक पानी नहीं बरसता और सिंचाई की जरूरत पड़ती है। शेष भागों में साधारण वर्षा होती है।

सरदी की ऋतु में हवायें बरमा के स्थल से समुद्र की ओर लौटती हैं। वे उत्तर-पूर्व से चलती हैं और बहुत कम पानी बरसाती हैं।

बनस्पति

बरमा के उपयोगी पौधे

सागौन—बरमा दुनिया भर में सागौन की लकड़ी के लिये मशहूर है। सागौन की लकड़ी बड़ी कड़ी होती है। इसकी लकड़ी न सड़ती है न मुड़ती और सिकुड़ती है। समुद्र में चलने वाले बहुत से जहाज़ों का डेक (फर्श) सागौन की लकड़ी का बना होता है। जहाज़ का फर्श प्रायः रोज़ धोया जाता है। धोने और समुद्री पानी पड़ने से यह लकड़ी कुछ भी नहीं बिगड़ती है। सागौन का पेड़ वहीं उगता है जहां अच्छी वर्षा होती है। अति अधिक वर्षा वाले और खुश्क भागों में सागौन नहीं उगता है। पीगू-योमा, अराकान योमा के पूर्वी ढालों और चिंडविन घाटी के दोनों ओर और ऊपरी इरावदी के बड़े प्रदेश में सागौन के पेड़ बहुत उगते हैं।

पिनकाडो का पेड़ सागौन से भी अधिक वर्षा पसन्द करता है। लेकिन अक्सर बनों में सागौन और पिनकाडो के पेड़ साथ साथ उगते हुये पाये जाते हैं। पिनकाडो की लकड़ी इतनी ठोस होती है कि बरमी लोग इसे लोह–लकड़ी कहते हैं। इसकी लकड़ी रेलवे सलीपरों

के काम आतो है। रेल की पटरियां इन्हीं सलीपरों पर कीलों से जड़ दी जाती हैं।

इन पेड़ों के अतिरिक्त बरमा में और कई तरह के पेड़ पाये जाते हैं। कुछ पेड़ मामूली वर्षा के प्रदेश में भी मिलते हैं। लेकिन इनकी लकड़ी बहुत अच्छी नहीं होती है।

बांस—बरमा के बहुत से भागों में उगते हैं। वह बरमा के बहुत से घरेलू कामों में आता है। बांस कई प्रकार के होते हैं। सर्वोत्तम बांस सागौन के बनों में मिलते हैं।

सागौन का पेड़ बरमा के केवल मानसूनी प्रदेश (जहां मौसमी हवायें गरमी की ऋतु में पानी बरसाती हैं।) में उगता है। लेकिन बांस बरमा के सभी भागों में होता है। कच (खैर) उन थोड़े पेड़ों में है जो बरमा के बीच वा खुश्क प्रदेशों में मिलता है। इससे पीला रंग निकलता है। पुंगी लोग इसी पोले रंग से अपने कपड़े रंगते हैं।

बरमा के तर भागों में नारियल, ताड़, सुपारी और केला उगता है।

देश दर्शन

शान पठार और अराकान योमा के अधिक ऊँचे भागों में देवदार और बांस के पेड़ होते हैं। देवदार से ही राल और तारपीन मिलती है।

बरमा के अत्यन्त गरम और अत्यधिक वर्षा वाले प्रदेश में रबड़ के पेड़ उगते हैं। रंगून, टनासिरम और टौंगू के पास रबर के बहुत से बगीचे लगाये गये हैं। रबर के पेड़ के निचले भाग की छाल को काटकर प्याला रखने की जगह बना लेते हैं। रबड़ का सफेद गाढ़ा रस इसी प्याले में टपकता रहता है। फिर यह इकट्ठा कर लिया जाता है।

पशु

बरमा के पालतू पशु हिन्दुस्तान के पशुओं से मिलते जुलते हैं। बैल बरमा के प्रायः सभी भागों में पाया जाता है। यह खेत जोतने और गाड़ी खींचने का काम करता है। जिन भागों में अच्छी सड़कें नहीं हैं वहां बैलों की पीठ पर बोझा लाद कर ढोया जाता है। बरमी लोग घी-दूध बहुत पसन्द नहीं करते हैं। इसलिये बहुत सी गायें मांस के लिये मार डाली जाती हैं।

भैंसा बैल के सब काम कर लेता है। वह कुछ सुस्त होता है। इसलिये भैंसा धीरे-धीरे चलता है। लेकिन वह बड़ा मज़बूत होता है। इसलिये वह अधिक भारी बोझा ढो लेता है। पानी से भरे हुये खेतों को जोतने और धान बोने के काम के लिये भैंसा बड़ा उपयोगी होता है। कुछ भैंसे जंगली होते हैं। वे जंगल के उन भागों में पाये जाते हैं जहां दलदल और पानी होता है। भैंसे इन भागों में घंटों दलदलों और पानी में पड़े रहते हैं।

खच्चर—घोड़ी और गधे के मेल से पैदा होता है। बोझा ढोने और मेहनत के काम में यह घोड़े से भी

अधिक अच्छा होता है। इसका पैर जल्द नहीं फिसलता है। इसलिये बरमा के पहाड़ी भागों में खच्चर बहुत पाला जाता है।

बकरी—यह सभी प्रकार की पत्तियों से अपना पेट भर लेती है। इसके चराने का काम छोटे बच्चों पर छोड़ दिया जाता है। बकरी बरमा के सभी भागों में पाली जाती है। लेकिन बरमा के बीच वाले भाग में बकरियों की अधिकता है। कुछ पहाड़ी भागों में भेड़ भी पाली जाती हैं।

सुअर—बरमा के कुछ पहाड़ी और दलदली भागों में सुअर पाले जाते हैं। सुअर फलों की गुठली और जड़ों को पसन्द करते हैं। वे मैला भी साफ कर देते हैं। भैंसों की तरह सुअर भी दलदलों में लोटना बहुत पसन्द करते हैं। बरमी और चीनी लोग सुअर का माँस बड़े चाव से खाते हैं।

हाथी—हाथी बरमा का सबसे अधिक मूल्यवान जानवर है। हाथी बड़ा बलवान होता है। बनों के लट्ठों को नदी तक घसीट लाने का काम हाथी करते हैं। बन्दरगाहों के पास नदी से आरा चलाने की मशीन तक लट्ठे

उतार लाने का काम भी हाथियों से लिया जाता है। हाथी बड़ा होशियार होता है और बहुत जल्द अपने महावत की बात समझ लेता है। बहुत भारी लट्ठों को कई हाथी मिलकर अपनो सूंड़ पर एक साथ उठा लाते हैं। हाथी की उम्र भी लम्बी होती है। कोई कोई हाथी डेढ़ दो सौ वर्ष तक जीता है। इसी अच्छे सीखे हुये हाथी बरमा में ७००० रु० तक बिकते हैं। जंगली हाथी घने जंगलों में रहना पसन्द करते हैं। कुछ लोग उनको मार डालते हैं। कुछ होशियार बरमी लोग हाथी दांत पर बड़ी बढ़िया नक्काशी करते हैं और उनसे सन्दूक, खिलौने और तरह तरह की दूसरी चीज़ें बनाते हैं।

बरमा के कुछ भागों में सौदागर लोग बोझा ढोने के लिये टट्टू पालते हैं। बड़े घोड़े गाड़ी में जोते जाते हैं। अधिक सुन्दर और तेज़ दौड़ने वाले घोड़े आस्ट्रेलिया से मँगाये जाते हैं।

कारबार

कृषि

बरमा में धान की फसल सबसे अधिक होती है। धान के लिये उपजाऊ ज़मीन प्रबल वर्षा और अधिक गरमी की आवश्यकता होती है। इसी से इरावदी डेल्टा मौलमीन (साल्वीन नदी के निचले भाग) और अक्याब के पड़ोस में धान बहुत होता है। खुश्क प्रदेश में जहां सिंचाई हो जाती है वहां भी धान उगाया जाता है। धान यहां इतना अधिक होता है कि बहुत सा चावल बाहर भेजने के लिये बच जाता है। मांडले के पड़ोस वाले खुश्क प्रदेश में तिल, मकई, ज्वार और बाजरा की फसलें भी उगाई जाती हैं। इनके अतिरिक्त अरहर, उर्द, मूँग और मूँगफली भी खूब होती है। लेकिन खुश्क प्रदेश में सबसे अधिक महत्व की फसल कपास है। कपास के लिये खुश्क और गरम जलवायु बड़ी अनुकूल होती है।

नदियों के किनारे उपजाऊ भूमि में तम्बाकू बहुत होती है। लेकिन बरमा के लोग तम्बाकू बहुत पीते हैं। इसलिये यह सब तम्बाकू वहीं खर्च हो जाती है।

खेती का काम

बरमा में प्रातः काल होते ही किसानों के बच्चे बैलों और भैंसों को धान के खेतों में ले जाते हैं। बरमा के खेत गांव के चारों ओर मीलों तक होते हैं। बहुतेरे खेत तो गांव से कई कई मील की दूरी पर रहते हैं। कहीं कहीं जंगलों को साफ करके कुछ खेत तैयार कर लिये जाते हैं। ढोरों को हांकने का काम सदा बच्चे ही करते हैं बड़े बड़े भयानक भैंसे भी इन बच्चों के अधिकार में रहते हैं और वे इनकी पीठ पर चढ़ कर चलते हैं। वर्षा के दिनों में ये बच्चे इन्हीं पशुओं की पीठ पर सवार होकर बड़े बड़े नदी-नालों को भी पार कर जाते हैं।

धान के पौदे को पानी की बड़ी आवश्यकता होती है। उगने और बढ़ने के समय इसे और भी अधिक पानी की ज़रूरत पड़ती है। जिस खेत में धान बोया जाता है उसे खूब समतल बना लेते हैं जिससे सारे खेत में बर.बर पानी भरा जा सके। खेतों के चारों ओर बांध बना दिये जाते हैं। इससे खेत में पानी भरा रहता है। साल के कई महीनों तक इन बांधों में पानी भरा रहता है इसलिये प्रान्त के एक भाग से दूसरे भाग को

जाने के लिये यह बांध बड़ा काम देते हैं। ये बाध ऐसे ऐसे टेढे औ घुमावदार होते हैं कि बहुधा इन बांधों पर चलने वाले अपना मार्ग भूल जाते हैं और कभी कभी तो इतना धोखा हो जाता है कि लोग लौट कर उसी स्थान पर आ जाते हैं जहां से वे चले थे। कभी कभी एक मील के मार्ग को पार करने में कई घंटे लग जाते हैं।

मानसून समाप्त होने पर धान बोया जाता है। इस समय सभी खेत पानी से लबालब भरे रहते हैं। पहले खेत हलों से जोते जाते हैं। बैलों, भैंसों और हाथियों से हल जोतने का काम लिया जाता है। जोतने के पश्चात् ढेलों को फोड़ने के लिये ठेंगा का प्रयोग होता है या गांव के सभी पशुओं को लाकर खेतों को कचरते हैं जिससे सभी मिट्टी के ढेले फूट जाते हैं।

धान का बीज इन खेतों में नहीं बोया जाता है। यहां लगाने के लिये वह पहले ही छोटी छोटी क्यारियों में बो दिया जाता है। जब छोटे छोटे पौधे तैयार होते हैं तो वह उखाड़ पानी पानी से भरे हुये खेतों में लगा दिये जाते हैं। ये धान के पौधे ५ या ६ इंच की दूरी

पर लगाये जाते हैं और इनके लगाने का काम स्त्री पुरुष दोनों ही करते हैं जब पानी में घुसकर लोग इन पौधों को लगाते हैं तो घास के बने हुए एक प्रकार के मोज़े पहने रहते हैं। ये मोज़े जोंक से बचने के लिये पहने जाते हैं। यहां पानी में जोंकें बहुत बड़ी संख्या में पाई जाती हैं।

पौधों को लगाने के बाद छोड़ दिया जाता है और वे पौधे स्वयं बढ़ते रहते हैं। हां जब खेतों में पानी की कमी हो जाती है तो नदियों, तालाबों या बांधों से पानी लाकर सिंचाई कर दी जाती है। यह पानी पम्पों या नालियों द्वारा लाया जाता है। धान के बढ़ने और पकने के समय तक किसानों को छुट्टी रहती है। बैल तेल पेरने और ऊख का रस निकालने के काम आते हैं। दूसरे पशु सभी जंगलों में इधर उधर घूमते रहते हैं।

अक्टूबर से धान की कटाई आरम्भ होती है और प्रायः दिसम्बर तक होती रहती है। जब धान की फसल तैयार हो जाती है तो इसके पौधे तीन चार फुट ऊँचे होते हैं। एक एक पौधे में कई कई बालें होती हैं। जहां कहीं पानी की अधिकता रहती है वहां धान के पौधे इतने घने उगते हैं कि दूसरी घासों का उगना कठिन हो जाता है।

धान के पौधे हँसिया से काटे जाते हैं। ये पौधे भूमि से कुछ ऊपर से काटे जाते हैं जिससे पौधे के नीचे का कुछ भाग जानवरों के चरने के लिये बच जाता है। कहीं कहीं इसकी पांस (खाद) भी बन जाती है। काटने के बाद बोझ बांध कर धान के बोझ खेत में दो एक दिन सूखने के लिये छोड़ दिये जाते हैं। जब वह सूख जाता है। तो खलिहान में लाकर पशुओं की दाएँ चलाकर मांड़ा (कुचला) जाता है। उसके बाद पुवाल को हिलोड़कर निकाल लेते हैं और धान का ढेर गर्द और तिनकों में मिला नीचे पड़ा रह जाता है। फिर यह ढेर हवा में बांस की टोकरियों द्वारा ओसाया जाता है। हवा के ज़ोर से दाना गर्द और तिनकों से अलग हो जाता है।

धान की भूसी (छिलका) ओखली में मूसल अथवा ढेंकी द्वारा कूटकर चावलों से छुड़ा दी जाती है और फिर सूप द्वारा चावलों से अलग कर दी जाती है। चावल का आटा भी पत्थर की चक्कियों में पीसा जाता है और उस आटे की सुन्दर रोटी बनाई जाती है जिसे लोग बड़े चाव से खाते हैं।

बरमा के किसान अपने साल भर के खाने और खर्च के लिये धान बखारियों (घास, काड़ी, मिट्टी

और संटियों द्वारा गूथ कर बनाया हुआ एक बड़ा बर्तन या कमरा) में रख लेते हैं। जो फालतू धान होता है। वह रंगून को भेज दिया जाता है।

धान के सिवा बरमा में मक्का, गन्ना और तिल आदि की भी उपज होती है। यहां कई प्रकार के फल और तरकारियां भी पैदा होती हैं। किन्तु चावल यहां की मुख्य उपज है। बरमा से चावल बहुत बड़ी मात्रा में बाहर भेजा जाता है।

बरमा के खनिज पदार्थ

बरमा में कई प्रकार की चट्टानें पाई जाती हैं। उनमें कुछ तो मिट्टी अथवा बलुआ पत्थर की भांति मुलायम होती है और कुछ कड़ी होती है। मुलायम चट्टानों को नदियां सुगमता के साथ काट कर बहा ले जाती हैं इसलिये वे देश के निचले प्रदेश में जाती हैं। इरावदी और सिटांग नदियों की घाटियां और डेल्टा इन्हीं मुलायम चट्टानों के बने हैं। कड़ी चट्टानों को पानी की धार सुगमता से नहीं बहा सकती। इसलिये वे पहाड़ियों की भांति ऊँचे प्रदेशों में पाई जाती हैं। अराकान योमा और शान के पठार ऐसी ही कड़ी चट्टानों के बने हैं।

तेल—दो प्रकार के होते हैं। एक तो धातुओं का तेल और दूसरा पौधों का तेल। बरमा में हमें ये दोनों प्रकार के तेल मिलते हैं। यहाँ पर तिल, गरी, मूंगफली आदि का तेल पाया जाता है। मिट्टी का तेल और पेट्रोल भी बरमा में इरावदी और चिंडविन की घाटियों में पाया जाता है। मिट्टी का तेल निकालने के लिये कुएँ खोदे जाते हैं और जब तेल मिल जाता है तो वह

मशीनों से पम्प द्वारा ऊपर लाया जाता है। फिर वह कलों से साफ करके दूसरे स्थानों को भेजा जाता है।

चांदी और सीसा—शान राज्यों में चांदी और सीसा पाया जाता है। यहां कड़ी चट्टानों में चांदी और सीसे के कण मिले हुए दूसरी धातों के साथ निकलते हैं। यह कड़ी चट्टान पहले तोड़ी जाती है और फिर उसके टुकड़े कड़ी आंच देकर गलाए जाते हैं। चांदी और सीसे का भाग गलकर पानी की भांति गलाने वाले बरतन के बाहर निकल आता है। उसके बाद चांदी के कण मिल कर इकट्ठा हो जाते हैं और सीसा नीचे पड़ा रह जाता है। बाडविन में चांदी और सीसे की एक बड़ी खान है। यह खान लाशिओ नगर के समीप स्थित है।

लालमणि :—ये सुन्दर लाल हीरे शान राज्यों में मोगो की खानों में पाये जाते हैं। लाल मिट्टी भी चांदी सीसे की भांति कड़ी चट्टानों में पाई जाती हैं। मोगो की खान दुनिया के हीरों की खानों में सबसे बड़ी है। बरमी लोग हीरा जवाहिरात को बहुत पसन्द करते हैं और इनका तराशना जानते हैं।

चेड—मोगो के उत्तर में मिचीना के पास जेड

(रत्न) पाया जाता है। चीनी लोग इसे बहुत पसन्द करते हैं। वे इसकी चूड़ियां और माला बनाते हैं।

कोयला—बरमा का कोयला बहुत अच्छा नहीं है। यह ऊपर आते ही कुछ समय में टुकड़े टुकड़े हो जाता है। यह काला के पास शान राज्य की कड़ी चट्टानों में पाया जाता है। पोकोको के पास यह ऊपरी चिंडविन के प्रदेश में पाया जाता है। बरमा के टेवाय और मरगुई ज़िले टीन के उपज के लिये प्रसिद्ध है।

सोना—बरमा में सोने की खाने नहीं हैं। लेकिन इरावदी और कुछ और नदियों के ऊपरी भाग की बालू में सोने के कण मिले रहते हैं। बरमी लोग इसी बालू को धोकर सोने के कण निकालते रहते हैं।

बरमा के बन

बरमा का सारा देश बनों से घिरा है। इन बनों में कई प्रकार के पेड़ पाये जाते हैं। ये पेड़ बहुत बड़े और मोटे होते हैं। इनकी लम्बाई २०० फुट तक होती है। ये पेड़ एक दूसरे से झाड़ियों, डालियों, बेलबूटों और लताओं द्वारा मिले रहते हैं। इन वृक्षों में भांति भांति के पशु-पत्ती निवास करते हैं और तरह तरह की मक्खियाँ, कीड़े-मकोड़े हर समय पुष्पों में भन भनाते दिखाई पड़ते हैं।

इन बनों का दृश्य बड़ा ही सुन्दर होता है। हाथियों का समूह इन बनों में घूमता हुआ दिखाई पड़ता है। इन जंगलों में सांप भी कई प्रकार के पाये जाते हैं। यदि कोई इन बनों का भ्रमण पहले पहल करे तो उसे कदा-चित् यहां का दृश्य देखकर कुछ विस्मय तथा भय मालूम होगा। किन्तु थोड़े दिनों भ्रमण कर लेने के बाद यह बन बड़ाही सुहावना मालूम पड़ने लगता है।

नारियल के वृत्तों और बांस के झाड़ों के नीचे हमें सुन्दर पुष्प-वाटिकाएँ दिखलाई पड़ती हैं। इनमें रंग

बिरंगे फूल खिले रहते हैं और मक्खियां तथा कीड़े-मकोड़े फूलों में गूँजते रहते हैं।

सागौन, रबर, शहतूत, पिंगाडो के बृक्ष बहुत बड़े होते हैं। कभी कभी (पिंगाडो) १५० फुट लम्बा हो जाता है और तब उसमें शाखा फूटती हैं। सेमर के बृक्षों की शाखाएँ जो ऊपर से नीचे को आजाती हैं वे नीचे आकर भूमि को पकड़ लेती हैं और जड़ फेंक देती हैं। कहीं कहीं ये आश्रय देने वाली बृक्षों की शाखाएँ २५० फुट ऊँची होती हैं। रामबाँस और बबूल के पेड़ों में कांटे होते हैं और वे बाड़े का काम देते हैं।

यहाँ के पेड़ बहुत बड़े और ऊँचे होते हैं। लेकिन ये अक्सर मुड़े हुए और गांठ वाले मालूम पड़ते हैं। इनकी ये घुमावदार गांठें बड़ी ही सुन्दर मालूम होती हैं। इन बृक्षों में लपटी हुई लताएँ और भी अधिक अनोखी हैं। वे इन बृक्षों को बांध लेतो हैं और बढ़ने नहीं देतीं। ये लताएँ बहुत बड़ी होतो हैं और इनकी शाखाएँ पृथ्वी तक लटकती रहती हैं। ये लताएँ कभी कभी एक बन से दूसरे बन के बीच या नदियों के ऊपर हवाई पुल सा बना देती हैं जिन पर बन्दर आदि पशु रहते हैं।

यहाँ एक अनोखी लता नीआंगवीन नाम की पाई जाती है यह बरगद के पेड़ से मिलती जुलती है। लता पेड़ों के ऊपर चिड़ियों द्वारा गिराए हुए बीजों से उत्पन्न होती है। बढ़ने के बाद यह अपनी शाखाएँ तथा सिरे, पृथ्वी की ओर फेंकती है। ये शाखायें नीचे पृथ्वी पर आकर जड़ पकड़ लेती हैं और ऊपर की ओर बढ़ती हैं। यह पहला पेड़ तो चारों ओर से जकड़ जाने से मुर्दा हो जाता है। लेकिन लताएँ एक नये वृक्ष का रूप धारण कर लेती हैं। यह नया वृक्ष पुराने वृक्ष से बहुत बड़ा और ऊँचा होता है। बरगद का पेड़ भी बरमा का एक अनोखा पेड़ होता है। इस वृक्ष में एक एक पेड़ में सैकड़ों तनह होते हैं।

इन बनों में पेड़ों के ऊपर भांति भाँति के पक्षी रहते हैं। पेड़ों के ऊपरी सिरों पर तोते आदि पक्षी रहते हैं। वृक्षों के मध्यवर्ती भाग में कबूतर, पेड़की, नील-कंठ आदि छोटे पक्षी निवास करते हैं। तनह के ऊपर खुटबढ़ई चिड़िया रहती है जो कीड़े-मकोड़ों को मार कर खाती है। पेड़ के इसी भाग में पेड़ के मेंढक और छिपकली रहती हैं। छोटे छोटे वृक्षों में फुदकी, खंजन आदि छोटी छोटी चिड़ियां अपने घोंसले बनाती हैं।

बरमा के बनों में हाथियों का समूह बहुधा इधर उधर घूमता फिरता दिखाई पड़ता है। इन बनों में शेर, तेंदुआ, चीता, रीछ, नीलगाय, साँभर और दूसरे प्रकार के हिरन पाये जाते हैं। जंगली सुअर भी बहुत पाये जाते हैं। साँप तो यहाँ बहुत हैं, रंग, बिरंगे, छोटे से छोटे और बड़े से बड़े सांप यहाँ पाए जाते हैं।

यद्यपि ये पशु बहुत बड़ी संख्या में पाए जाते हैं तो भी ये बड़े शरमीले होते हैं। जंगलों में कदाचित् ही कभी किसी मनुष्य से इन जानवरों से मुठभेड़ होती हो। भय का भाव तो इन जंगली जानवरों की सुन्दरता देख कर ही चला जाता है। शरद ऋतु में इन बनों की सैर अच्छी और सुहावनी होती है। इस ऋतु में पृथ्वी कड़ी हो जाती है और भांति भांति के फूल, फल, पौधे और लताएँ होती हैं। जंगलों में सभी प्रकार के पशुपक्षी विचरते रहते हैं।

बरमा में मई से अक्टूबर तक वर्षा होती है। वर्षा बड़े जोरों की होती है। नदी, नाले, तालाब आदि सभी पानी से भर जाते हैं। इस समय जंगल का भ्रमण करना बड़ा कठिन होता है। वर्षा का अन्त हो जाने पर धूप

होने लगती है। पशु-पक्षी बनों में विचरने लगते हैं और इन दिनों में ये वन सब ऋतुओं से अधिक सुन्दर होते हैं।

मार्च और अप्रैल में गरमी पड़ती है। इन दिनों गरमी के प्रभाव से सभी पेड़ मुरझा जाते हैं। जब पतझड़ हो जाता है तो तेज़ हवा चलने लगती है। जंगल के बांस या वृक्ष जब एक दूसरे से रगड़ खाते हैं तो अग्नि उत्पन्न हो जाती है। यह अग्नि बड़ी प्रचण्ड होती है और बड़े बड़े पेड़ों को छोड़ कर सारा जंगल जल कर खाक हो जाता है। जहां कुछ समय पहले स्वर्ग सा मालूम होता था वहाँ अब उजाड़ और शून्य हो जाता है। छोटे पशुपक्षी, कीड़े-मकोड़े और साँप जो भी इस (जंगल की आग) में पड़ते हैं सब जल भुन जाते हैं। इस प्रकार प्रकृति अपने जिन हाथों से सजाती है उन्हीं हाथों से बिगाड़ भी डालती है। वर्षा होते ही सारा जंगल का जंगल फिर हरा भरा हो जाता है।

इन जंगलों में जगह जगह पर सरकारी डाक बँगले बने रहते हैं। ये डाक बँगले लकड़ी के मोटे लट्ठों के ऊपर बनाये जाते हैं। इनमें दो या तीन कमरे होते हैं और

ये लकड़ी के ही बनाए जाते हैं। जंगली निवासी ही इन डाक बँगलों की देख भाल करते हैं। यद्यपि ये डाक बँगले सरकारी नौकरों के लिए बनाए जाते हैं तो भी इनमें सभी प्रकार के यात्री ठहर सकते हैं। बरमी लोग जंगलों में बांसों के भी छोटे छोटे घर बनाते हैं, जिनका अधिकांश भाग खुला रहता है। इन घरों को ताई कहते हैं। रात को यहाँ कड़ाके का जाड़ा पड़ता है और ताई मकानों में जाड़े के कारण रात को नींद आना कठिन हो जाता है।

यात्री अपनी यात्रा बड़े सबेरे ही आरम्भ कर देते हैं। चलने के पहले वे कुछ जलपान कर लेते हैं। रास्ते में ओस के कारण यात्रियों के वस्त्र भीग जाते हैं। थोड़ी देर बाद सूर्योदय हो जाता है और इतनी तेज़ धूप पड़ने लगती है कि यात्रियों को खुले भागों में चलना कठिन हो जाता है। वे शीघ्र ही छायादार सघन पेड़ों के बीच वाले मार्गों में चले आते हैं। यात्रा में यहाँ छोटे टट्टुओं का प्रयोग किया जाता है। खाने पीने का सामान, बर्तन और विस्तर आदि दूसरा सामान हाथियों पर लाद कर ले जाया जाता है।

जो हाथी यात्रियों का बोझा ढोते हैं उनसे दूसरा काम नहीं लिया जाता और उनको "माती" कहते हैं। इनके पीलवान "आउज़ी" कहलाते हैं। ये पीलवान हाथी के कंधों के ऊपर अपने पैर नीचे लटका कर बैठते हैं। जब यह लोग हाथी के ऊपर चढ़ते हैं तो हाथी अपना अगला पैर उठा लेता है और यह उस पर होकर गर्दन पर चले जाते हैं या हाथी घुटनों को तोड़ देता है और पीलवान सूंड़ के सहारे ऊपर चले जाते हैं।

जब ये हाथी चलते हैं तो बड़ी मस्त चाल से धीरे धीरे चलते हैं। किन्तु तो भी इनके पैर जल्दी जल्दी उठते हैं और ये अपना मार्ग शीघ्र ही समाप्त कर डालते हैं। जब ये हाथी किसी तंग बाँध के ऊपर से चलते हैं या किसी नाले के ऊपर लट्ठों के पुल को पार करते हैं तो इन्हें देख कर बड़ी हँसी मालूम होती है। ये हाथी दुर्गम से दुर्गम मार्गों को आसानी से पार कर जाते हैं।

मुलायम और दलदली भूमि में हाथी चलने से डरता है ऐसी भूमि में भारीपन के कारण उसका पैर कीचड़ में फँस जाता है। जब कभी भी ऐसा मार्ग उसके सामने आ जाता है, तो वह चिंघाड़ने लगता है और रुक

जाता है। यदि उसे जाना ही पड़ा तो वह घास या पेड़ों को टहनियाँ तोड़ तोड़ कर अपने पैरों के नीचे रखता जाता है। एक बार कुछ लोग शिकार खेलने जा रहे थे। उनके मार्ग में कुछ दलदली भूमि थी। हाथी ने आगे बढ़ने से इन्कार किया। जब उसे आगे बढ़ने पर बिवश किया गया तो उसने सब से पहले अपने पीलवान को खींच कर कीचड़ पर डाल दिया और उसके शरीर पर अपना मार्ग बनाया। पीलवान बेचारा कुछ कर न सका। और हाथी ने उसे पैरों के नीचे कुचल कर मार डाला।

हाथी बड़ा ही चतुर और आज्ञाकारी जानवर होता है। वह अपने पीलवान को बहुत प्यार करता है। उस पर चढ़ने वाले यदि उसके समीप आते हैं तो वह नाखुश हो जाता है। योरुपीय लोगों से हाथी बहुत चिढ़ता और घृणा करता है।

बरमा के बनों में सड़कें बहुत कम हैं। इन बनों में तङ्ग रास्ते हैं। यहां जंगली पौदे इतनी तेज़ी से उगते और बढ़ते हैं कि दाह (गड़ासा) से डालियाँ और झाड़ियाँ काट कर मार्ग बनाना पड़ता है।

इन बनों के मार्ग बड़े दुर्गम और कठिन होते हैं।

दोपहर के समय आराम करना आवश्यक हो जाता है। दोपहर के बाद यात्री लोग फिर चलते हैं और संध्या होते ही "ताई" (ठहरने वाले स्थान) पाकर ठहर जाते हैं। टट्टू "ताई" के नीचे बाँध दिये जाते हैं। हाथी जंगलों में छोड़ दिये जाते हैं। हाथियों के गले में "कालाडक" लकड़ी का घंटा बँधा रहता है। जब सबेरा होता है तो महावत इन्हीं घंटों के सहारे हाथियों को जल्द ढूंढ़ लेते हैं।

संध्या होते ही जंगल में कोलाहल बन्द हो जाता है और शान्ति छा जाती है। दिन भर कड़ी धूप और गर्मी के कारण जंगल के सभी पशु-पत्ती थक जाते हैं और सूर्य अस्त होते ही अपने अपने स्थानों में जा छिपते हैं। इस समय लता और पत्ते भी हिलते नहीं दिखाई पड़ते। हवा बन्द हो जाती है, सारी प्रकृति थकावट के कारण स्थिर सी प्रतीत होने लगती है। इस समय १०५ दर्जे गरमी होती है। थोड़ी देर पश्चात् अँधेरा छा जाता है और अचानक हवा चलने लगती है। हवा के साथ साथ जाड़ा भी पड़ने लगता है। सारे बन में सनसनाहट का शब्द गूँज जाता है। रात को जुगनू इधर उधर उड़ने

लगते हैं। झींगुर आदि कीड़े-मकोड़े राग-रागनियाँ अला-पने लगते हैं। इस प्रकार शीत के कारण प्रकृति देवी की निद्रा भंग हो जाती है।

यात्री लोग आग जला कर चारों ओर बैठ कर आग तापते और गप-सप करते हैं। भयानक जंगली जानवर अग्नि के प्रकाश से कुछ दूर इधर उधर अंधकार में घूमते रहते हैं। अधिक रात हो जाने पर लोग अपने स्थानों पर जाकर सो जाते हैं।

जंगलों में कहीं कहीं लकड़िहारों, चीनी लोगों और जंगली लोगों के रहने के स्थान दिखाई पड़ते हैं। ये लोग अपने खाने के लिये धान पैदा कर लेते हैं। इन लोंगों के चेहरों पर नीले गोदने गुदे रहते हैं। कहीं कहीं पर चिड़ीमार अपने प्राचीन जाल और लासा लिए चिड़ियों को फँसाते दिखाई पड़ते हैं। रास्ते में बरमी लोगों की बैलगाड़ी कहीं कहीं दिखाई पड़ जाती है। ये लोग अपने गाड़ियों के पहियों में तेल नहीं देते, इसलिये इन पहियों से बड़ी तेज़ आवाज़ पैदा होती है। इन गाड़ियों के गाड़ी-वान शोर मचाते रहते हैं। इन लोगों का विश्वास है कि शोर मचाने से भूत पिशाच समीप नहीं आते।

बरमा के कीड़े-मकोड़ों में चींटे और दीमक सबसे ज्यादा भयानक और खतरनाक होते हैं। ये जहाँ अपने रहने का स्थान बनाते हैं, वहाँ इनकी खोदी हुई मिट्टी के ढेर लग जाते हैं। ये मिट्टी के ढेर बहुधा ६ फुट ऊँचे होते हैं। दीमक गिरे हुये वृक्ष के लट्ठे या बढ़ते हुये पौधे को खाती हैं। जिस वस्तु को ये खाने लगती हैं उसके भीतर का भाग बिलकुल खा जाती हैं और वह खोखली या पोली रह जाती है। ये सागौन की लकड़ी को नहीं खाती इसी लिये सागौन की लकड़ी बहुत अच्छी मानी जाती है।

बरमा के जंगलों में बहुधा लोग सागौन काटते दिखाई पड़ते हैं। इनकी कटाई और ढुलाई देखने में बड़ा आनन्द आता है। कभी कभी जहां कटाई होती रहती है वहां ही छिछले पानी का तालाब होता है। इन तालाबों में मछलियां और पानी वाले सांप रहते हैं। जंगली पशु-पक्षी इन्हीं जलाशयों में पानी पीने आते हैं। तटों पर इनके पैरों के चिन्ह बने रहते हैं। पास ही चारों ओर सुन्दर प्राकृतिक पुष्प-वाटिकाएँ, लताएँ तथा घास के मैदान होते हैं। जलाशयों पर बगुले मछलियों की ताक में बैठे रहते हैं।

यहाँ बन-मार्ग कष्टप्रद नहीं होता क्योंकि वहाँ सुन्दर दृश्य होते हैं। पहाड़ों के ठीक नीचे बाँसों के जंगल होते हैं। ये बाँस कई प्रकार के होते हैं। बाँस चारों ओर फैले रहते हैं। इनके नीचे सुन्दर कुँए और मार्ग होते हैं। नीचे पृथ्वी पर बालू रहती है, जहाँ कुमुद और नलिनी के सुन्दर फूल खिले रहते हैं।

बरमा में बाँस बहुत होता है। यह कई प्रकार का होता है। कोई कोई तो बहुत छोटे और कोई कोई ६० फुट से १०० फुट तक लम्बे होते हैं। बरमी लोग बाँस का प्रयोग लगभग सभी कामों में करते हैं। ये लोग कभी कभी अपना सारा मकान बाँस ही का बनाते हैं। मकानों का ढाँचा बेंत का बनता है। फ़र्श तथा सुन्दर मज़बूत चटाइयाँ भी बेंत की बनाई जाती हैं। छत बाँस की पत्तियों की बनाई जाती हैं। बांस का रेशा बड़े काम का होता है। बाँस से कागज़ बनाया जाता है। टोकरियाँ, तशतरियाँ प्याले आदि भी इसके बनते हैं। सुन्दर छड़ियाँ, लाठियाँ और छाते इत्यादि भी इसके बनते हैं। बाँस के कुर्सी, मेज़, सन्दूक और आलमारियाँ भी बनाई जाती हैं। बाँस जलाने के काम भी आता है।

उत्तरी बरमा के पहाड़ों और पठारों में सनोवर, देवदार और सिन्दूर के जंगल हैं। इनके सिवा इन बनों में और दूसरे प्रकार के वृक्ष भी पाये जाते हैं। नीचे कुछ दूर खुले स्थानों पर जंगली बेर के पेड़ होते हैं। इन पहाड़ों से चमकती हुई छोटी छोटी धाराएँ नीचे की ओर आती हैं। इन धाराओं के इधर उधर सिवार, काई और और छोटे पौदे लटकते हुये दिखाई पड़ते हैं। नीचे घाटियों में आकर ये धाराएँ नदियों से मिल जाती है। नदियों के किनारों पर नरकुल और जंगली केलों के बन होते हैं।

नदियों के तटों पर झोपड़े बने होते हैं। इन झोपड़ों के निवासी नावों पर बैठ कर और जाल लगाकर मछली का शिकार करते हैं। इन पथरीले मार्गों में बैल गाड़ियों का प्रयोग नहीं होता। यहाँ पर टट्टू बोझा ढोने का काम करते हैं। मार्ग इतना दुर्गम होता है कि यदि ये टट्टू ठोकर खाकर गिर पड़ें तो वे मर जावें।

पहाड़ों के नीचे घाटियों में बाँस और बेंतों के जङ्गल बड़े ही घने होते हैं। इनमें बया के घोंसले और बर्रों के छत्ते होते हैं। इनमें भाँति भाँति के छोटे पत्ती भी गाते रहते हैं।

इन सघन बनों में मनुष्य को अपना मार्ग काट कर बनाना पड़ता है। जब मनुष्य इन जङ्गलों में घुसता है तो बड़े बड़े बन्दर किलकारियाँ मारते हुए पेड़ों के ऊपर दिखाई पड़ते हैं। बन्दर जङ्गल में घुसने वाले मनुष्य का पीछा करते हैं। वे यात्री के इतने समीप आ जाते हैं कि उसे भय प्रतीत होने लगता है। ये बन्दर मनुष्यों के समीप शायद यह देखने आते हैं कि यह कौन सा जानवर है जो जङ्गलों को काट कर घुस रहा है।

चीनी सीमा के समीप, चीनी, शान और शान-तिलोक जातियों के लोग आते जाते दिखाई पड़ते हैं। यह लोग टोकरियों में सामान लिये होते हैं। बहुधा यह लोग परिवार के साथ चलते हैं। वे अपने सामान और छोटे बच्चों को बँहगियों में लादे रहते हैं।

नीचे के प्रदेशों में बहुधा मार्ग दिखाई पड़ते हैं। यहाँ नदियों में छोटे छोटे और तरह तरह के पुल हैं। यहां सबेरे कुहरा पड़ता है और कुहरे के साथ ही साथ बरफ़ और पाला भी पड़ता है। दिन में कड़ी धूप और अत्यन्त गरमी पड़ती है। गरमी और सरदी दोनों की अधिकता

के कारण यह भाग बुखार का घर सा बन गया है। यहां पर लोग अक्सर बीमार पड़ जाते हैं।

इस भाग में ऊँचे पर्वत और गहरी घाटियां हैं। इन घाटियों में बड़ी चौड़ी नदियाँ बहती हैं। कहीं कहीं चौरस मैदान हैं, जहां कुछ खेती होती है। इन मैदानों में छोटे छोटे गांव हैं। इनमें शान, यूनन-निवासी और कछिन लोग रहते हैं। इन लोगों का रहन-सहन का ढंग बड़ा विचित्र है। शान लोग अपने चेहरे, टांगें और छातियों को गुदाते हैं। यह लोग कपड़ा बहुत कम पहनते हैं। इनके कपड़ों में जेब लगाने का स्थान नहीं रहता। इसलिए पीठ पर सींकों या डालियों की बनी एक टोकरी रहती है। इसमें वे अपना चाकू, तम्बाकू और दूसरी वस्तुएँ रक्खे रहते हैं। यूननी लोग घास का बना हुआ हैट और घास का ही बना हुआ एक विचित्र प्रकार का चप्पल पहनते हैं। यह लोग हलकी पोशाक पहनते हैं। मालूम होता है कि यह लोग सरदी से बिलकुल बेपरवाह रहते हैं। कछिन लोग रंग बिरंगे मोटे ऊनी कपड़े पहिनते हैं। यहाँ लोग अपने सिरों में बड़े बड़े बाल रखाते और चुटिया बांधते हैं। सिरों पर यह लोग रुमाल बांधते हैं। स्त्रियों की पोशाक

पुरुषों की भाँति ही होती है और वे भी सिरों में रुमाल बांधे रहती हैं। स्त्री, पुरुष दोनों कानों को छेदाते हैं और उनके सूराख इतने बड़े होते हैं कि वे उसी में अपने सिगार (बड़ी चुरट) लगा लेते हैं। यह लोग अपने बगल के नीचे कपड़े का एक झोला रखते हैं जिससे वे जेब का काम लेते हैं।

इन बनों में सभी प्रकार के पशु-पक्षी पाये जाते हैं। कीड़े-मकोड़ों की संख्या भी बहुत है। यहाँ पर रंग-बिरंगी तितलियाँ बहुत पाई जाती हैं। इस भाग में कुछ गांव होने के कारण कौए, आदि दूसरे पक्षी भी पाये जाते हैं।

जङ्गलों में जानवरों से भय भी बहुत रहता है। हाथी जब कुपित होता है तो बड़ा भयानक और ख़तरनाक होता है। तेंदुआ भी जब घने वृक्षों और झाड़ियों के बीच में होता है तो ख़तरनाक होता है। बाघ बड़ा चोर और छिप छिप कर चलने वाला जानवर है। वह बहुधा शिकार की ताक में इधर उधर झाड़ियों में छिपा रहता है। सांप बड़े ज़हरीले होते हैं। साँप के काटने से मनुष्य शीघ्र ही मर जाता है किन्तु यह डरपोक होते हैं और आहट पाते ही भाग जाते हैं।

सागौन की कटाई

बर्मा में कई प्रकार की बहुमूल्य लकड़ी पाई जाती है। सागौन की लकड़ी बहुत श्रेष्ठ मानी जाती है। इसकी लकड़ी का मामूली कार्यों और घर आदि के बनाने में भी प्रयोग किया जाता है। सागौन की लकड़ी में विशेष गुण होता है कि वह लगभग सभी की सभी ही लकड़ी होती है। सागौन की लकड़ी अत्यन्त कड़ी, मज़बूत और भारी होती है। लेकिन कुल्हाड़ी, आरी रुखानी आदि औजारों से यह आसानी से काटी जा सकती है। लोहा या कीलों के प्रयोग करने से इसमें किसी प्रकार का भी मुर्चा नहीं लगता। इसका रङ्ग भूरा होता है, और इसमें एक प्रकार की सुगन्ध पाई जाती है जिससे इसकी पहिचान भली भाँति हो सकती है। सागौन की लकड़ी में एक प्रकार का तेल भी निकलता है, जिसके कारण इसमें कीड़े-मकोड़े नहीं लग सकते, इसी कारण यह लकड़ी जल्द खराब नहीं होती। सचमुच सागौन एशिया में पाये जाने वाले सब पेड़ों का राजा है। सागौन इतना भारी होता है कि ताज़े लट्ठे पानी में नहीं बहाए जा सकते। इसको सुखाने का

सब से अच्छा ढंग यह है कि पहिले सागौन के वृक्षों को कुल्हाड़ों द्वारा नीचे का भाग चारों ओर काट दिया जाता है। इस प्रकार काटने से पेड़ की पत्तियां सूख जाती हैं और वृक्ष मुर्दा हो जाता है। कुछ समय में वह बहाने योग्य हलका हो जाता है। इस प्रकार करने से न तो लकड़ी को जला दिये जाने का भय रहता है और न जड़ पकड़ने या खराब होने का ही कोई भय रहता है। जब पेड़ सूख जाता है तो उसे गिराते हैं। गिरने के पश्चात् तने का जो भाग शेष रह जाता है उसे काम करने वाले कुली काट कर अपने काम में लाते हैं। यदि हरा पेड़ काटकर गिराया जाता है तो फिर उसमें गोंद फूटते हैं जो एक ही ऋतु में ६ से १० फुट तक बढ़ जाते हैं, और तब जंगल की आग उनको जलाकर साफ कर देती है। और यदि बच गये तो ६० साल में वे बड़े हो जाते हैं और उनमें अच्छी लकड़ी तैयार हो जाती है।

जब पेड़ काट कर गिरा दिये जाते हैं तो उनको काट काट कर लट्ठे बना लिये जाते हैं। इन लट्ठों को खींच कर ले जाना बड़ा ही कठिन कार्य होता है।

क्योंकि जहाँ पर ये काटे जाते हैं बहुधा वहाँ से नदी का तट दूर होता है। मार्ग भी दुर्गम और पहाड़ी होता है। इसलिये लकड़ी के लट्ठों के खींचने का काम हाथियों से लिया जाता है। वर्षा ऋतु में यह लकड़ी खींचकर नदियों के किनारे लाई जाती है। इस ऋतु में नदी नाले सभी पानी से भर जाते हैं, भूमि भी फिसलने लगती है और गर्मी भी कम हो जाती है। इन लट्ठों के एक किनारे को काट कर उसमें हाथियों के जंज़ीरों के बाँधने के सूराख बना लिये जाते हैं और उन्हीं जंज़ीरों में लट्ठों के बेड़े बांध दिये जाते हैं। लट्ठों को ले जाने वाले मार्ग पहिले ही से ऐसे बना लिये जाते हैं जिनमें पानी भर जाता है। मार्ग के सभी नदी नालों का प्रयोग इन लट्ठों की खिंचाई के लिये किया जाता है।

जब तक वर्षा की बाढ़ आती रहती है तब तक ये लट्ठे नदियों में नहीं उतारे जाते। जब बाढ़ समाप्त हो जाती है तो एक एक करके यह लट्ठे गहरे पानी में डाले जाते हैं। और इस प्रकार लट्ठों का बेड़ा बना लिया जाता है। जब बेड़े तैयार हो जाते हैं तो उनको बहाकर बन्दरगाहों पर लाया जाता है।

इरावदी और शीलाँग नदियाँ इन पेड़ों के बहाने के लिये प्रयोग की जाती हैं। साल्वीन नदी केवल निचले ६० मील तक (जहाँ उस की धार मन्द होती है) लट्ठों के बहाने के लिये प्रयोग की जाती है। सालवीन नदी प्रायद्वीप के पूर्वी प्रदेश में बहती है। यह कँकरीले पथरीले प्रदेश में होकर अपना मार्ग बनाती है। इस नदी की तेज़ धारा का अन्दाज़ इसी से किया जा सकता है कि बहुतेरे लट्ठे ठोकरें खाते खाते टूट कर चूर चूर हो जाते हैं। जब तक ये लट्ठे पकड़ कर बेड़े बनाने वाले स्थानों तक नहीं पहुँचते तब तक लकड़ी के रोज़गारियों को इनकी प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के समय ये लट्ठे एक एक करके मनुष्यों द्वारा या छोटी छोटी नावों द्वारा लाए जाते हैं। जहाँ पर पानी गहरा होता है। वहाँ पर इन बेड़ों की पंक्तियाँ एक साथ चलती हैं। ये बेड़े बेतों से मज़बूती के साथ बँधे रहते हैं और इनको ५ या ६ आदमी खींच कर ले जाते हैं। इस प्रकार इन खींचने वालों को कई सप्ताह ज्वार-भाटा आने-जाने वाले स्थानों तक ले जाने में लग जाते हैं।

कभी कभी इन लट्ठों के बेड़ों को मार्ग में तेज़ धार में रोकना पड़ता है तो एक अनूठी युक्ति का प्रयोग होता है। दो खूंटे दस दस फुट के बनाये जाते हैं और १०० फुट लम्बा तथा १ इञ्च मोटा बेत इन खूंटों में बांध कर बाड़े के अगले भाग की ओर से एक किनारे पर लाया जाता है और उसको इस प्रकार भूमि खरोंचते हुये खींचा जाता है कि लट्ठों का बेड़ा चक्कर काटने लगे। चक्कर काटने से उसकी चाल मन्द पड़ जाती है और इस प्रकार वह रोक दिया जाता है।

इरावदी नदी

बरमा में इरावदी नदी बड़े काम की है। रंगून, माण्डले, भामो आदि बड़े नगरों से रोज़ाना माल जहाज़ों और नावों पर लदकर आता जाता रहता है। इन जहाज़ों द्वारा लोग यात्रा भी करते हैं।

इरावदी नदी में हज़ारों मील तक जहाज़ चलते हैं। बरमा की जन-संख्या का अधिकांश भाग इरावदी के तट पर बसा हुआ है। इस नदी के किनारे पर अन्त तक नगरों और गांवों की एक क़तार है। इन नगर और गांवों में सुन्दर बौद्ध-मन्दिर हैं।

इरावदी नदी बड़ी है। काफ़ी चौड़ी और गहरी है। इसके किनारे की भूमि कछारी है और बड़ी उपजाऊ है। इसी सुन्दर और उपजाऊ भूमि को बहा कर इरावदी नदी ने अपने मुहाने पर बड़ा डेल्टा बना लिया है। इस बड़े डेल्टे में बहुत सी धाराएँ हैं। नदी मुहाने पर शाखाओं में बँट कर खाड़ी में गिरती है। इससे मुहाने पर बहुत से छोटे छोटे द्वीप बन गये हैं। यहां पर जहाज़ नहीं चल सकते और नावों से काम लिया जाता

है। इन द्वीपों में घने बन हैं जिनके जंगली जानवर बहुधा रंगून नगर तक चले आते हैं।

समुद्र के समीप होने के कारण इरावदी की इन छोटी छोटी शाखाओं में ज्वार भाटा आता है। इन टापुओं के किनारे किनारे आम और नारियल के पेड़ हैं। यहाँ कीचड़ और उथले पानी के ऊपर के लट्ठों को गाड़ कर मल्लाह अपने झोंपड़े बनाते हैं। रंगून और बेसीन टापू को मिलाने वाली खाड़ी के उत्तर में एक बड़ा उपजाऊ मैदान है। इस मैदान में धान बहुत पैदा होता है जो देसावर भेजा जाता है।

इरावदी नदी के सभी बन्दरगाहों से नावों पर लद लद कर धान रंगून में आता है। यहाँ की मिलों में यह सारा धान कूट कर साफ किया जाता है और फिर दिसावर को भेजा जाता है।

यहाँ नदी के किनारे किनारे सुपारी, नारियल और दूसरे पेड़ हैं। प्रत्येक घाट के समीप कोई न कोई गाँव है, इसके चारों ओर तिल और केलों की वाटिकायें हैं। यहाँ ऊँचे स्थानों पर नावें बनाई जाती हैं।

प्रोम से ऊपर इरावदी नदी पर्वतों से घिरी हुई है।

यहाँ दोनों ओर नदी का तट बहुत ऊँचा है पानी के ऊँचे-नीचे बहाव के कारण चबूतरे की भांति इन पर्वतों की चट्टानें कट गई हैं। इन पर्वतों पर घने बन हैं और किनारे किनारे गाँव बसे हुये हैं।

इरावदी नदी की धारा बहुत तेज़ है। इस नदी में बहुधा बाढ़ आती है और यह अपना मार्ग भी अक्सर बदलती रहती है। इस नदी में ३०० फुट लम्बा और ८० फुट चौड़ा जहाज़ चलता है। ऐसे जहाजों में लगभग २,००० यात्री यात्रा कर सकते हैं। ये जहाज़ एक प्रकार के तैरते हुये बाज़ार हैं। जब ये स्टेशनों पर पहुँचते हैं तो गाँव वाले अपनी उपज बेचने और उनके बदले में दूसरी चीज़ें मोल लेने के लिये आ जाते हैं। इन जहाज़ों पर सभी प्रकार की आवश्यक वस्तुयें मिल सकती हैं।

जब स्टेशन समीप आ जाता है तो घाट पर एक बड़ी भीड़ इकट्ठी हो जाती है। उतरने और चढ़ने वाले दोनों ही उत्सुक रहते हैं। जिस प्रकार भारतवर्ष में देहात के रेलवे-स्टेशनों पर चढ़ने-उतरने में लोग एक दूसरे को धक्का देते हैं। उसी प्रकार यहाँ भी होता है।

इसका परिणाम यह होता है कि कभी कभी लोग पानी में गिर जाते हैं। ये जहाज़ स्टेशनों पर थोड़ी देर तक ठहरते हैं।

इन घाटों पर लोग नहाते, कपड़ा, बर्तन इत्यादि साफ करते रहते हैं। बालक और बालिकाएँ किनारे पर या स्टीमर के चारों ओर तैरते और खेल कूद करते हैं।

इरावदी नदी में तरह तरह के बोट चलते हैं। "लाउन्गज़ाट" नामक बोट की बनावट बड़ी अनोखी है और इसमें बहुत बड़ी मात्रा में सामान भरा जा सकता है। इस के पानी काटने वाले बीच के पुर्ज़े पानी के ऊपर साफ दिखाई पड़ते हैं इस का पेटा बड़ा ही सुन्दर और मज़बूत बना होता है। इसके आधे भाग में मल्लाहों के रहने का मकान बना होता है। ऊपर छत पर घास का छत्र तना रहता है। जिससे मल्लाहों को छाया मिलती है। इस का पतवार लम्बा पैडिल की तरह होता है।

मल्लाह नावों को डांड़ों से खेते हैं। इनमें १२ से १६ डांड़ तक होते हैं। जब तेज़ हवा चलती है तो पाल

का प्रयोग किया जाता है। नाव के बीच में दो बांस होते हैं। ये दोनों ऊपर (सिरे पर) रस्सी से खूब एक दूसरे से जकड़ कर बंधे रहते हैं। इन्हीं बांसों में ६ या सात बर्गाकार पाल अनोखे ढंग पर बंधे होते हैं। हवा में इन को खोल देने से नौका बड़े वेग के साथ चलने लगती है। यहां के निवासी बड़े मोटे ठोस लकड़ी के लट्ठे को भी पोला बना कर नाव बनाते हैं।

इरावदी नदी के किनारे किनारे मछली मारने का काम बहुत होता है। मछली मारने वाले किनारों पर छोटे छोटे ऊंचे झोंपड़े बना कर रहते हैं। यह झोंपड़े बांस और घास के बने होते हैं। इन मल्लाहों के पास मछली मारने के तरह तरह के जाल होते हैं।

इरावदी नदी में बहुधा सागौन और पिन्गाडो के लट्ठों के बेड़े बहते रंगून को जाते हुए दिखाई पड़ते हैं। कोई कोई बेड़े बहुत बड़े होते हैं और उन पर स्त्री, बच्चे गाय, बकरियां आदि सभी रहते हैं। इनके ऊपर छोटे-छोटे झोपड़ों का एक छोटा गांव सा बसा रहता है। किसी किसी बेड़े के ऊपर बांस और घास का पगोडा

भी बना रहता है। नदी के किनारे किनारे बहुधा मल्लाहों के लिये ऐसे पगोडा बने रहते हैं।

सूर्यास्त के समय इरावदी नदी के पास यूमा पर्वत का दृश्य बड़ा ही सुन्दर होता है। नदी के तट के पगोडों तथा गांवों की छाया जल पर पड़ती है और वह जल क्षण-क्षण में कई रंग बदलता है।
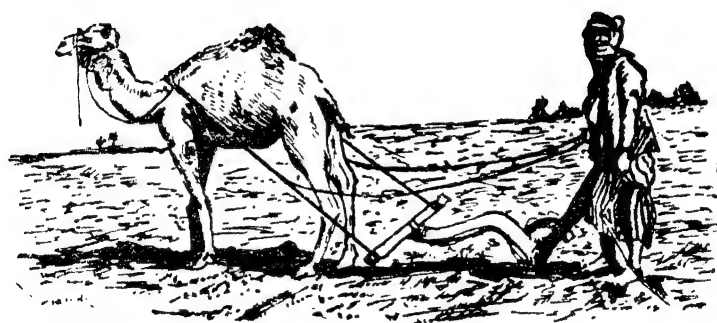
निवासी

बरमा के निवासी

असली बरमी लोग बरमी इरावदी नदी की घाटी के निवासी हैं। हम इन्हें राष्ट्र कह सकते हैं किसी समय में इस जाति का स्वतंत्र राज्य बरमी के अधिकांश भाग पर स्थापित था और यह लोग अपने समीपवर्ती स्याम राज्य को भी अपने अधिकार में कर लेने की कोशिश कर रहे थे। इनके राजा की यह दशा देखकर बंगाल के ब्रिटिश राज्य को भी भय मालूम होने लगा। सन् १८१० ई० में इनके राजा ने आसाम पर आक्रमण किया और उसे अपने अधिकार में करना चाहा। इससे इनके और अँग्रेज़ों के बीच लड़ाई छिड़ गई। बरमी वालों और अँग्रेज़ों के बीच तीन लड़ाइयाँ हुईं। परिणाम यह हुआ कि १८८५ ई० में बरमी का रहा सहा राज्य भी जाता रहा। ये अँग्रेज़ों के अधिकार में होगए।

इन युद्धों में बरमा के निवासियों ने स्वयं अपनी इच्छा से कभी भाग नहीं लिया। क्योंकि यहाँ के निवासी शान्त प्रकृति के लोग हैं। शायद यह जाति कभी भी अपने पड़ोसी से न लड़ेगी। यह लोग ब्रिटिश जाति

की आधीनता में बड़े शान्त रहे और इन्होंने अपनी स्त्रियों के प्रति भी बड़ी शान्तिप्रियता दिखाई।

बर्मा की स्त्रियों को पूरी स्वतंत्रता प्राप्त है। कुछ लोगों का कहना है कि स्त्रियाँ जब बाहर निकलती और स्वतंत्रता पूर्वक घूमती हैं तो उनकी चाल चलन ख़राब हो जाती है। किन्तु यहाँ सभी अवस्था की स्त्रियाँ स्वतंत्रता पूर्वक बाहर आती जाती और घूमती हैं। कभी भी उनके आचरणों में कोई बुराई नहीं दीख पड़ती। इन स्त्रियों के हृदय में स्त्री जाति के गौरव तथा आत्म-सम्मान का ज्ञान होता है और यही उनको सत से डिगने से बचाता और सतीत्व की रक्षा करता है। बरमा का यह सामाजिक रूप घरों के भीतर ही नहीं वरन् बाहर मार्गों, सड़कों और बाज़ारों में भी दिखाई पड़ता है। माँडले और रंगून की रमणियाँ सभी स्थानों और दूकानों पर बैठी अपना व्यापार चला रही हैं। उनको सभी प्रकार की वस्तुओं के मूल्य भली भाँति मालूम हैं और वे सौदा के बेचने में किसी प्रकार की धोकेबाज़ी नहीं करतीं और सत्यता तथा कोमलता का व्यवहार करती हैं।

बरमी लोग बड़े प्रसन्न चित्त होते हैं। वे अपने सभी

कार्य्यों को करते हुए भी आमोद, प्रमोद, नाच, गानों और बौद्ध मठों (पगोडा) के उत्सवों में जाते हैं। और बड़े समारोह के साथ इन उत्सवों में सम्मिलित होते हैं। इन मन्दिरों में सभी स्त्री पुरुष आते हैं और आनन्दपूर्वक अपना समय गाने, बजाने और खुशी मनाने में व्यतीत करते हैं। इन मठों के व्यवहारों में बरमा निवासी स्त्रियाँ सुन्दर चमकीला रूमाल गले में बाँधती हैं। वे सुन्दर बहुरंगी चोलियाँ और चमकीले आँचल पहनती हैं। वे अपने बालों को रंग बिरंगे फूलों से सुसज्जित करती हैं। और सुन्दर बहुमूल्य आभूषणों को धारण किए इन मन्दिरों में प्रवेश करती हैं। यहाँ के पुरुष भी अपने सरों पर चमकीले रेशमी साफ़े बांधे और सुन्दर रंगबिरंगे बहुमूल्य चोग़े पहने यहाँ आते हैं। ऐसी दशा में यह कहना कठिन हो जाता है कि स्त्रियों के कपड़े अधिक सुन्दर हैं या पुरुषों के।

बरमा के निवासियों में और दूसरे देशों की अपेक्षा आमोद-प्रमोद और सुन्दरता का भाव रोम रोम में घुसा हुआ है। जिस प्रकार हम उनको ऊपर से स्वच्छ देखते हैं। उसी प्रकार उनके अन्तःकरण भी स्वच्छ, पवित्र

और साफ़ हैं। यहाँ लड़कपन से ही बालकों को धर्म-सम्बन्धी शिक्षा दी जाती है। इतना ही नहीं वरन् उन्हें एक धार्मिक पुरोहित की भाँति अपने जीवन के कुछ दिन बिताने पड़ते हैं।

ऐसी दशा में यह लोग अपने सर मुंडवा डालते हैं। और पीले वस्त्र धारण कर लेते हैं और दुनिया की सभी प्रकार की वस्तुओं का त्याग कर देते हैं। यह लोग अपने गलों में रोटी माँगने वाले पात्रों को लटका लेते हैं और गाँव के चारों ओर भिक्षा मांग अपना समय व्यतीत करते हैं। जब यह लोग फिर अपने दुनियावी जीवन में प्रवेश करते हैं तो महात्मा बुद्ध के उपदेशों से बड़े पक्के पुजारी बन जाते हैं।

बरमी लोग बड़े पुराने ख्याल वाले भी होते हैं। वे पाँच राक्षसों (शेर, जंगली सुअर, उड़ने वाला साँप, आदमी खाने वाली चिड़िया तथा डरावनी चलने वाली लौकी) से बहुत डरते हैं। वे सप्ताह के दिनों को भी अच्छा और बुरा समझते हैं। शुक्रवार को वे सुअर का दिन, सनीचर को अजगर (बड़े साँप) का दिन और सोम-वार को वे शेर का दिन समझते हैं। इन दिनों में जो

बालक पैदा होते हैं, उनकी रक्षा के लिये उन्हीं जानवरों की सूरत की पीली या लाल मोम बत्तियाँ बनाकर ये लोग मूर्ति-मन्दिरों (पगोडा) में चढ़ाते हैं।

बर्मा के निवासी खेल कूद के भी बड़े शौकीन होते हैं। वे लोग अपनी सारी ताकत और सारा ध्यान खेल कूद के समय उसी में लगा देते हैं। फुट बाल, कुश्ती लड़ना, बाक्सिंग करना, दौड़, घुड़दौड़ और नावों की दौड़ इनके सार्वजनिक खेल हैं। ये लोग जुवा भी खेलते हैं। खेल के समय ये लोग बड़े ही खुश और प्रसन्न चित्त रहते हैं।

बरमी लोग बड़े कारीगर होते हैं इनकी कारीगरी की उपमा हमको इनके सुन्दर मन्दिरों और स्मारकों में मिलती है। इतना ही नहीं वरन् इनके रोजाना के पहनाव, शारीरिक और घरों की सुन्दरता तथा सजावट से हमें पता चलता है कि ये लोग कारीगरी तथा सजावट के बड़े प्रेमी होते हैं। कारीगरी के लायक बनाने तथा रंगों के मिलाव करने में ये लोग बड़ी चतुरता दिखाते हैं। इन की चतुरता देख कर लोग विस्मित हो कर इन की प्रशंसा करने लगते हैं।

स्त्री-जाति की स्वतंत्रता तथा स्त्री-पुरुष की बराबरी का नमूना हम बरमी लोगों के व्याह आदि में देख सकते हैं। जब लड़की और लड़के व्याहने योग्य हो जाते हैं तो वे आपस में एक दूसरे से प्रेम दिखाते हैं किन्तु प्रेमिका और प्रेमी कभी भी अकेले अथवा गुप्त भाव से बात चीत नहीं कर सकते। वे दिन में भी एक साथ नहीं चल सकते। प्रेमियों का एक साथ चलना, बातचीत करना असभ्य समझा जाता है। इन प्रेमियों के बात चीत करने का समय नौ बजे रात के बाद होता है। जब रात को नौ बज जाते हैं, तो प्रेमी युवक अपने दो, एक मित्रों को साथ लेकर प्रेमिका के घर की ओर आता है और सीटी द्वारा अपने आने की सूचना लड़की को देता है। फिर इधर उधर बात चीत करता टहलता रहता है। युवती भी पहले ही से अपने दो एक सहेलियों को बुला लेती है। जब घर के लोग सो जाते हैं तो वह प्रेमी युवक को इशारा देती है। तब फिर ये लोग एक कमरे में बैठकर बात चीत करते तथा प्रेम का परिचय देते हैं। किन्तु वे एक दूसरे का शरीर स्पर्श नहीं करते हैं। ऐसा करना

असभ्य समझा जाता है। इस प्रकार दो चार घंटे व्यतीत करने के बाद वे अपने स्थान को चले जाते हैं।

यदि माता पिता ने ऐसे मिलाप में कोई आपत्ति न की तो दो तीन मिलाप के पश्चात् उनका व्याह हो जाता है। शादी के समय लड़की के पिता के घर में सभी परिचित लोगों का निमन्त्रण होता है। मर्द लोग एक जगह इकट्ठा होते हैं और लैमनेड और दूसरे शर्बत पीते हैं। वे पान खाते और सिगरेट तथा सिगार पीते हैं। स्त्रियाँ भी एक कमरे में इकट्ठा होती हैं और कुछ खाती पीती तथा सिगार या सिगरेट पीती हैं। इस प्रकार बिना किसी प्रकार का विवाह-संस्कार किये ही उनका व्याह हो जाता है। यदि लड़की को लड़के की ओर से कोई भी शक हुआ अथवा झगड़ा हुआ तो वह गाँव अथवा नगर के बड़े और प्रतिष्ठित लोगों के सामने साफ साफ कह देती है, यदि वे लोग ठीक समझते हैं तो लड़की को तलाक़ (छोड़ देने) देने की आज्ञा दे देते हैं।

बरमा के गाँव के चारों ओर झाड़ियों और लकड़ियों के ऊँचे बाड़े बने होते हैं। इन बाड़ों के ऊपर तरह तरह की बेलें और लताएँ होती हैं। इन बेड़ों में चारों ओर बड़े बड़े लट्ठों के दर्वाज़े होते हैं। ये दर्वाज़े बहुत भारी होते हैं। इनको सुगमतापूर्वक बन्द करने या खोलने के लिये इनके नीचे पहिये लगे रहते हैं। प्रत्येक दर्वाज़े पर एक चौकीदार होता है। चौकीदार के रहने के लिये मकान दर्वाज़े के समीप ही बना रहता है। रात को ये दर्वाज़े बन्द कर लिये जाते हैं जिससे कोई जंगली जानवर या अजनबी गाँव के अन्दर न आ सके। इन द्वारों से गाँव को जाने वाली सड़क पर पीने के लिये स्वच्छ पानी रक्खा रहता है। पानी पीने के प्याले नारियल के बने होते हैं और उनमें एक लकड़ी का लम्बा डंडा भी लगा रहता है।

गाँव के बरमी लोगों के घर ताड़, आम, पीपल आदि पेड़ों की क़तार के बीच में बने होते हैं। घर एक क़तार में बनाये जाते हैं। घरों की क़तार के बीच में गली आवश्यक होती है। ये मकान अधिकतर बाँस के बने होते हैं। किसी किसी मकान में सागौन आदि की

लकड़ी भी लगाई जाती है। मकान का फर्श ज़मीन से कई फुट ऊँचा होता है। मकान की छत पत्तिओं की बनाई जाती है। फ़र्श, दीवालें आदि बाँस के बनते हैं। सोने के लिये चटाइयां होती हैं। ये लोग भोजन लकड़ी के बर्तनों में करते हैं। भोजन बनाने वाले बर्तन कसकुट या मिट्टी के बने होते हैं। इन घरों में चारपाई, मेज़, कुर्सी आदि नहीं होते। घरों की छतों के ऊपर बेलें और लताएँ होती हैं। और घरों के आस पास केले के पेड़ लगे रहते हैं।

किसान धान के खेतों में काम करते हैं। लड़के पशुओं की देख भाल करते हैं या स्कूल में पढ़ने जाते हैं। यहाँ लड़कियाँ जंगल से लकड़ी काट कर लाती हैं और छोटे तालाबों से लालटेन का कच्चा मिट्टी का तेल ले आती हैं। गाँव के लोगों का मुख्य पेशा खेती है। कुछ लोग टोकरियाँ और चटाइयाँ बुनते हैं। कुछ लोग रेशम कातते और मिट्टी के बर्तन बनाते हैं। कुछ लोग कोल्हू में बैलों को जोत कर ईख का रस और तेल निकालते हैं। यहाँ के गाँव के लोगों का जीवन बड़ा सादा और सुखी है।

नगरों में गांव की तरह बाड़े नहीं बनाये जाते,

वरन् चारों ओर खाई खोदी जाती है । यह खाई चौड़ी होती है और इसमें पानी भरा रहता है। कहीं कहीं घरों के चारों ओर भी खाई होती है । नगर में घर लकड़ी के बनाये जाते हैं। कोई कोई घर दो-मंजिले होते हैं। ये घर भिन्न भिन्न प्रकार के रँगों से रँगे रहते हैं। खाई के ऊपर पुल होते हैं। घरों के चारों ओर चबूतरे बने होते हैं। सड़कों के दोनों ओर सुन्दर छायादार वृक्ष लगे रहते हैं। कहीं कहीं सड़कों और गलियों के दोनों ओर पैदल चलने वालों के लिये मार्ग बने होते हैं।

घरों के सामने एक बाटिका होती है जिसमें आम, अमरूद और दूसरे छोटे फलों के पेड़ होते हैं। इनमें सुन्दर कुञ्ज और लताऐं भी होती हैं। घरों के भीतर भी फूलों के गमले रहते हैं।

बरमा के नगरों में कई प्रकार की बैलगाड़ियाँ चलती हैं। स्त्रियों के लिये एक खास तरह की गद्देदार गाड़ी होती है। इसमें एक छोटा सा दरवाज़ा पीछे की ओर होता है। उसी के द्वारा स्त्रियाँ चढ़ती उतरती हैं।

बरमा के निवासी खेल-कूद बहुत पसंद करते हैं। यहाँ

"चिनलोन" एक अनोखा फुटबाल का खेल होता है। यहाँ के लड़के पतंग बहुत उड़ाते हैं।

नगरों के सड़कों के कुओं का दृश्य बड़ा ही सुन्दर होता है। कुएँ के चारों ओर दीवाल रहती है और बीच में एक लट्ठा इस पार से उस पार डाल दिया जाता है। युवक तथा युवतियें की इन कुओं पर भीड़ लगी रहती है। यह हँसी दिल्लगी करती हुई अपने कार्य्य करती रहती हैं।

बरमा के स्त्री, पुरुष और बच्चे सभी चुरट पीते हैं। ये लोग पान खाने के भी बड़े शौक़ीन होते हैं। बरमी लोग ताड़ी भी पीते हैं। यह लोग अधिकतर शाकाहारी होते हैं। मछली को छोड़कर और दूसरे मांस का प्रयोग यह लोग बहुत कम करते हैं। इन लोगों का कहना है कि मछली को वे नहीं मारते वह तो स्वयं पानी के बाहर आते ही मर जाती हैं।

प्रत्येक नगर और गाँव में पगोडा (बौद्ध-मन्दिर) होते हैं। यहाँ लोग अपना अधिकतर समय व्यतीत करते हैं। यहाँ के धनी लोग अपना धन, ध्यान और समय सभी इन पगोडों के बनाने में लगा देते हैं। प्रत्येक नगर और

गाँव में एक पवित्र सरोवर होता है। जिसमें कमल और दूसरे पौधे होते हैं। ये पौधे पानी को ढके रहते हैं। जिससे पानी नहीं दिखलाई पड़ता। इनमें बड़े बड़े कछुए और मछलियाँ होती हैं।

नगर के बाहर की ओर वाटिकाएं होती हैं। यह रेंड़ या नागफनी के पौधों से घिरी रहती हैं। इनमें केला, अनन्नास, चकोतरा, नींबू, कटहल, अमरूद, इमली, नारियल, सुपारी आदि के पेड़ होते हैं। इन वाटिकाओं में मसालों के पेड़ भी होते हैं।

नगरों के अन्दर पुजारी दिन में कई बार भिक्षा माँगते हुए दिखाई पड़ते हैं। सूर्यास्त होने के बाद बाज़ार की दूकानें बन्द हो जाती हैं और सभी लोग अपने अपने स्थानों को लौट पड़ते हैं।

देश दर्शन

शान-जाति

लोगों का कहना है कि शान और स्याम एक ही शब्द हैं और चीनी भाषा से निकले हैं। शान शब्द का अर्थ 'पर्वत' होता है। इसलिये शान-जाति का अर्थ पहाड़ी निवासी(पहाड़ पर रहने वाला) हुआ। किन्तु शान जाति के लोग इस बात को नहीं मानते। वे अपने को 'ताई या थाई' कहते हैं। ताई अथवा थाई का अर्थ "स्वतंत्र" या कोमल होता है।

यद्यपि वर्तमान काल में कोई भी स्वतंत्र शान-राज्य नहीं है, तो भी शान-जाति इण्डो-चीनी जाति का एक मुख्य भाग है। प्राचीन काल में इनका एक बड़ा स्वतंत्र राज्य था। इनका राज्य आसाम, बरमा इण्डोचीन तथा चीन और स्याम में फैला हुआ था। अब यह लोग सभी जातियों में मिल जुल गए हैं और वर्तमान समय में इनकी कोई स्वतंत्र जाति शेष नहीं रही।

वर्तमान समय में शान शब्द का प्रयोग, लाओ, स्यामी शब्द की तरह एक समूह के लिये होता है। शान शब्द से मतलब उन ताई (बर्मी) लोगों से है जो

बरमा की एक शान-स्त्री

अब अँग्रेज़ों के अधिकार में हैं और लाओ शब्द उन ताई (स्यामी जाति) वालों के लिये प्रयोग होता है जो फ्रांस वालों के अधिकार में हैं। इस प्रकार शान लोग अपने शरीर में गुदना गुदाते हैं और तरह तरह की तसवीरें तथा फूल-पत्तियाँ गुदाकर अपने शरीर को सुसज्जित करते हैं। यह लोग अपने को अँगवोव कहते हैं।

शान लोग अपने पड़ोसी चीनी, बरमी और अनामी जातियों से अधिक मज़बूत, तगड़े और सुडौल होते हैं। इनका शरीर पाँच या साढ़े पाँच फुट लम्बा होता है। इनका रंग साफ़ गेहुआँ होता है। आँखें तिरछी, गहरी-भूरी और नाक चौड़ी तथा सुडौल होती है।

शान लोग अच्छे स्वभाव तथा सुन्दर प्रकृति वाले, चतुर, और अतिथिप्रेमी होते हैं। यह लोग कलाकौशल तथा कारीगरी के बड़े प्रेमी हैं।

लाओ और शान दोनों जातियाँ बौद्ध हैं। यह लोग सभ्य तथा पढ़े लिखे हैं। बौद्ध मत की शिक्षा पर अनु-सरण करने के कारण यह लोग बड़े शान्त तथा कोमल प्रकृति वाले हो गए। यही कारण है कि पूर्वी एशिया में इनकी अधिक संख्या भी है। इन लोगों के छोटे छोटे

राज्य अँग्रेज़ों, फ्रांसीसियों तथा चीनियों के अधिकार में हैं।

यह लोग इण्डो-चीनी भाषा का प्रयोग बोलने तथा लिखने पढ़ने में करते हैं। यह इनकी भाषा से मिलती जुलती है। केवल अक्षरों के आकार और चिन्हों में अन्तर आ गया है।

लुआँग-प्राभाँग नगर के बाज़ारों में भिन्न भिन्न की भीड़ दिखाई पड़ती है। वहाँ दक्षिणी, उत्तरी और श्वेत स्यामी लोग, काले तथा गोरे लाओ यूनानी, चीनी, बरमी, शान और अरब लोगों की भीड़ होती है। ये सभी लोग यहाँ एक दूसरे से मिलते जुलते और सौदा करते हैं। बाज़ार में दूसरी वस्तुओं के सिवा मछली (जो गाय के मांस के टुकड़ों की तरह मालूम होती हैं) तरकारी, हरी मटर की छीमी, सुअर के बच्चे, कच्चा रेशम, मोमबत्ती, मालाओं की गुड़िया, चाकू, बटन और मैनचेस्टर की बनी छीट बिकती हैं।

यह लोग बौद्ध हैं तो भी यह लोग भी जानवरों का शिकार करते हैं और सैकड़ों जानवर हर साल मारे जाते हैं। इन लोगों में भी ओझा होते हैं और देवी, देवता,

राक्षस, चुड़ैल, भूत-प्रेत आदि उनके सर आते हैं। वे लोग इनके बश में होकर खेलते हैं। हमारे भारतवर्ष की तरह यहां के ओझों का भी लोगों पर बड़ा प्रभाव होता है और लोग इन्हें इनाम तथा रिश्वत आदि देकर प्रसन्न रखते है। जब ये ओझा खूब मदिरा आदि पीकर भूतों और पिशाचों के आपे में आकर खेलते हैं तो किसी जानवर के बलिदान की आज्ञा देते हैं। बलिदान के मांस का प्रथम भाग यही खाते हैं। जब ये लोग आमोद-प्रमोद के लिये किसी स्थान पर इकट्ठे होते हैं तो नगाड़ा और घंटा बजाया जाता है और सब लोग उसकी सूचना पाकर आजाते हैं।

बरमी लोगों की भांति शान लोग भी अपनी स्त्रियों के साथ बहुत अच्छा व्यवहार करते हैं। इनकी स्त्रियों को काफ़ी स्वतंत्रता है। वे पुरुषों के बराबर मानी जाती हैं। इन लोगों के बीच में भी पुरुष पहले अपनी प्रेमिका से बातचीत करता है और उसकी मर्ज़ी के अनुसार उस के माता-पिता को सूचना देता है। फिर गांव या नगर के सयाने लोगों से अपने प्रेम का हाल पुरुष कहता है और निश्चित समय पर उन लोगों को

आने के लिये निमंत्रित करता है। जब सब इकट्ठा हो जाते हैं तो पुरुष से पूछा जाता है कि वह अपनी पत्नी का बोझ संभाल सकता है या नहीं, तब उस की मर्ज़ी के अनुसार बुड्ढे लोग उन्हें आशीर्वाद देते हैं। उसके बाद सभी भोजन करने बैठते हैं। सब से पहले यह लोग चावल की शराब पेट भर भर कर पीते हैं। फिर सभी प्रकार के भोजन और मिठाइयां परोसी जाती हैं। इन के भोजन में मेंढक, मछली, केकड़े, चूहे-चुहियां आदि भी परोसे जाते हैं और लोग उन्हें बड़े चाव से खाते हैं। शादी के बाद दो साल तक जोड़े (दूल्हा-दुलहिन) को स्त्री के माता-पिता के घर में रहना पड़ता है। उसके बाद दूसरे दो साल जोड़े को पति के माता पिता के घर में वास करना पड़ता है।

इन लोगों के यहाँ भी तलाक़ (त्याग) की प्रथा प्रचलित है। तलाक़ देने वाले पुरुष अथवा स्त्री को ६० रु० नक़द (जिसको तलाक़ दिया जाता है) देना पड़ता है। और यदि स्त्री-पुरुष में न निभी और वे तलाक़ न देकर जुदा हुए तो सारी जायदाद आधी आधी बांट ली जाती है। नक़द रक़म का दो तिहाई पुरुष पाता है

और कपड़ों तथा घर का दो तिहाई भाग स्त्री पाती है। सभी लड़के बाप के साथ हो जाते हैं और लड़कियां मां के साथ हो जाती हैं।

बौद्धों की भांति शान लोग भी मृतक शरीर को जलाने, गाड़ने या कर्म-आदि करने में बड़ी लापरवाही करते हैं। किन्तु इसके बाद उनकी आत्मा की शान्ति के लिये बड़े बड़े कार्य्य करते हैं। उनके मृतक के नाम पर स्मारक, तथा मन्दिर बनवाते और दूसरे परमार्थ के कार्य्य करते हैं। इन लोगों का विश्वास है कि इस दुनिया की तरह एक दूसरी दुनिया भी है जहां मरने के बाद आदमी जाता है। वहां पर दो राजा, एक अदालत और दूसरे बहुत से अफ़सर लोग हैं। इन स्थानों में अच्छे लोग देवी, देवता होते हैं। बुरे सदैव के लिये नरक भोगते हैं। जो बीच वाले हैं वे अपने कार्य्यों के अनुसार अपना भोग करते हैं।

पहले इन लोगों के बीच में ग़ुलामी की प्रथा प्रचलित थी और सरदार लोग ग़ुलाम रखते थे। वे बैंकाक और कोरात आदि स्थानों में इनको बेंचते थे। अब यह प्रथा इन लोगों के बीच से चली गई है।

इरावदी नदी पर लगभग रोज़ सवेरे कुहरा पड़ता है। सूर्य के प्रकाश होने पर यह कुहरा उड़ जाता है। यहां पर प्रातःकाल सूर्य निकलने पर दृश्य बढ़ा ही रमणीक हो जाता है। नदी के दोनों किनारों पर सुन्दर शिलायें हैं, जिन पर भांति भांति की हरी लताएँ और वृक्ष हैं। सूर्योदय होते ही चहल-पहल आरम्भ हो जाती है। लड़के और जवान अपने पके खेतों में जंगली पक्षियों को उड़ाने लगते हैं। पशुओं के झुण्ड नदी के किनारे घूमने लगते हैं। किनारे और लकड़ी के बेड़ों के ऊपर जलाई हुई आग का धुवां ऊपर सीधा उठता हुआ दिखाई पड़ने लगता है।

दोनों तटों के बीच में कहीं कहीं नदी का घुमाव बड़ा ही सुन्दर है। किसी किसी स्थान पर तो नदी का पानी बिल्कुल झील की तरह मालूम होता है। ऐसे स्थानों पर बहुत से जंगली हंस, सारस और दूसरे पानी पर चलने वाले पक्षी किलोलें करते रहते हैं। राम-चिरैया अपने शिकार के पीछे यहां इधर उधर घूमती रहती हैं। बकुला भी मछली की तलाश में बैठे रहते हैं।

कहीं कहीं यह नदी बहुत संकीर्ण (तङ्ग) है और

इधर-उधर के पहाड़ी किनारे ८०० फुट ऊँचे हैं। यदि सवेरे हम ऐसे स्थान पर पहुँच जावें तो यहां के अँधेरे को देख कर हम चकित हो जावेंगे। ऐसे स्थानों पर नाव और स्टीमर का चलना कठिन हो जाता है। यहां भी दोनों ओर पहाड़ों पर हरे हरे जंगल हैं। यहां पर नदी बड़े बेग से बहती है। इस दृश्य को देख कर यात्री की यात्रा सफल हो जाती है।

इरावदी नदी की बहुत सी सहायक नदियां हैं। उन में चिण्डविन और 'म्यू' नदी प्रधान हैं। इनके सिवा और भी बहुत सी छोटी छोटी नदियां हैं जो बरसात में बहती हैं और साल के शेष दिनों में खुश्क हो जाती हैं। मई से लेकर सितम्बर तक यहां वर्षा ऋतु रहती है। वर्षा ऋतु में इरावदी नदी में बाढ़ आती है। इसका पानी शीघ्र ही ४० या ५० फुट बढ़ जाता है और किनारों के झोपड़े इसकी बाढ़ में बह जाते हैं।

प्रत्येक सहायक नदी के मुहाने पर बांसों का ढांचा बना रहता है जिस पर मछली मारने वाले जाल फैलाए रहते हैं। जहाँ पानी कुछ उथला होता है वहां लट्ठे इकट्ठा किये जाते हैं। इन बेड़ों को बेंत से बांधा जाता है।

पिङ्गाडो की लकड़ी बड़ी भारी होती है और पानी में डूब जाती है। इस लिये इन के बेड़ा बनाने के पहले बांस का बेड़ा बनाते हैं और उसी के नीचे पिंगाडो के लट्ठे लटकते रहते हैं।

इरावदी नदी पर स्टीमरों का आखिरी स्टेशन भामो है। थेबीटक्यान स्थान पर 'लाल' खानों से निकाल कर लाये जाते हैं। यहां के पगोडा के पुजारी नदियों की मछलियों को पालते हैं और उन्हें रोज़ अपने हाथों से भोजन कराते हैं।
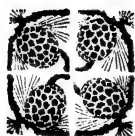
धर्म तथा मन्दिर

बरमा पगोडो का देश कहलाता है। धुर उत्तर में मिचीना से लेकर रंगून के दक्षिण सिरियम तक ये मंदिर फैले हुए हैं। नदियों के किनारे, पहाड़ों के ऊपर, शहरों और गांवों के अन्दर सभी स्थानों पर ये मन्दिर पाये जाते हैं। सुन्दर निर्जन जंगलों में भी ये मन्दिर दिखाई पड़ते हैं।

रंगून का श्वेडेगन, प्रोम का श्वेटशानडा, मांडले के समीप अराकान, पगान, पीगू और मौलमीन के प्राचीन बौद्ध मन्दिर बड़े सुन्दर हैं। इन मन्दिरों की सुन्दरता की बराबरी नहीं की जा सकती। इन मन्दिरों का आकार एक घंटे के समान दिखाई पड़ता है। ये पगोडा (बौद्ध मन्दिर) जलाशयों के समीप बनाये जाते हैं। इससे पानी में इनकी सुन्दर छाया दिखाई पड़ती है। इन मन्दिरों के चारों ओर घंटियां लटकती रहती हैं जो हवा के झोकों से हिलकर बजने लगती हैं। इनका शब्द बड़ा ही सुरीला और सुहावना होता है। मन्दिरों में और दूसरे बड़े बड़े घंटे भी होते हैं, जो दो लकड़ी के

खम्भों के बीच लटका कर बजाये जाते हैं। जब पुजारी लोग पूजा कर चुकते हैं तो वे इन घंटों को बजाते हैं। इन घंटों के बजाने का आशय यह होता है कि नर (देवता गण) जान जावें कि पुजारी पूजा कर चुके।। मिंगून के मन्दिर का बड़ा घंटा ८० टन (लगभग २००० मन) का है।

बरमा में पगान, सगाई और मांडले नगरों में पगोडों की संख्या बहुत है। इस लिये उन का उल्लेख एक एक कर के नीचे दिया जाता है।

मांडले

मांडले नगर अपने धार्मिक मन्दिरों और किले के लिये प्रसिद्ध है। किले के चारों ओर अच्छे मज़बूत और सुन्दर व्यापारियों (योरुपीय, चीनी, हिन्दुस्तानी) के बंगले बने हुये हैं। बरमी लोग लकड़ी के बने झोपड़ों में रहते हैं। यह एक बड़ी आश्चर्य-जनक बात है कि बरमी लोग सुन्दर, मज़बूत और बहुमूल्य मन्दिर बनाते हैं, किन्तु अपने मकान ठीक ढङ्ग से नहीं बनाते हैं।

मांडले नगर की सड़कें चौड़ी और आयताकार हैं। इन सड़कों के दोनों ओर सघन छायादार पेड़ लगे हुए हैं।

यहां बरमी लोगों का जीवन बड़ा ही सुन्दर है। यहां के स्त्री-पुरुष दोनों सुन्दर, चमकीले, रंग-विरंगे रेशमी कपड़े पहनते हैं। इनके रूमाल, कपड़े, छाते और पंखे सभी बेल बूटों से सुसज्जित होते हैं। यहां की स्त्रियां एक प्रकार की लेई थान्नाकाह अपने चेहरों पर लगाती हैं। यह चेहरों की सुन्दरता बढ़ाने के लिये लगाई जाती है किन्तु इस से प्राकृतिक सुन्दरता नष्ट हो जाती है। इससे खाल श्वेत पड़ जाती है और नम्रता तथा चिकनाहट जाती रहती है।

मांडले का किला बर्गाकार मज़बूत और बड़ी दीवालों से घिरा है। प्रत्येक दीवाल की लम्बई सवा (१$\frac{१}{४}$) मील है। दीवालों के भीतर की ओर चौड़ी और गहरी खाई है। इन खाइयों के ऊपर अनोखे पुल हैं। दीवालों के भीतर की ओर राजा का महल और दूसरे बड़े मकान हैं। थीबा राजा के सिंहासन के ऊपर जो महल बना है, वह बड़ा ही सुन्दर और ऊँचा है। यह देश भर में सब से अधिक सुन्दर है। बरमा के निवासी इस को दुनिया का केन्द्र कहते हैं।

माण्डले का सर्वोत्तम बौद्ध मन्दिर आग में जलकर

खाक हो गया है। यहाँ थीवा राजा के पिता मिंडनमीन का बनवाया हुआ "कुथोडा" का मन्दिर है। इसके चारों ओर ७२९ छोटे छोटे गुम्बद हैं, जिनमें एक श्वेत पत्थर की चटिया लगी हुई है। इसके ऊपर पाली भाषा में बौद्ध-धर्म के शिला लेख हैं। इनके दरवाज़े भी सुन्दर और बड़े हैं।

माण्डले नगर के हर एक भाग में पगोडा हैं। नगर के बाहर की ओर इरावदी नदी के तट से लेकर माण्डले पहाड़ी तक इनकी एक पंक्ति है। माण्डले नगर में बहुत से मठ हैं जिनमें रानी का स्वर्ण मठ सबसे अधिक सुन्दर है। बरमा भर में यह सर्वोत्तम मठ है।

माण्डले के दूसरी ओर नदी पार का दृश्य बड़ा ही रमणीक है। नदी के तट पर सुंडाकार पहाड़ियाँ हैं। इन पर सुन्दर मन्दिर बने हैं। इन मन्दिरों के चारों ओर सुन्दर लताएँ हैं। इन मन्दिरों पर जाने के लिये सीढ़ियाँ बनी हैं। प्राचीन समय में यहीं पर सगाईं नगर और राजधानी थी। किन्तु अब केवल मन्दिर रह गये हैं। इन मन्दिरों के दर्शन के लिये दूर दूर से यात्री आते हैं। सीढ़ियों के समीप दरवाज़ों पर शेर-रूपी दानवों की मूर्तियाँ हैं। कहा

जाता है कि किसी समय में यहाँ के राजा की राजकुमारी को कोई राक्षस चुरा ले गया। राजा ने राजकुमारी के ढूंढ़ने का बड़ा प्रयत्न किया किन्तु वह न मिली। अन्त में एक दिन एक शेरनी उसे ढूँढ़ लाई। उसी की याद में ये मूर्तियाँ मन्दिरों की रखवाली के लिये बनाई गई हैं।

माण्डले के समीप दक्षिण की ओर अमरपुरा नगर है। यह भी किसी समय में बरमा की राजधानी रह चुका है। यहाँ सर्वोत्तम मन्दिर अराकान पगोडा है। यह बरमा के प्रसिद्ध तीर्थ स्थानों में से है। यहाँ पर शान और दूसरी पहाड़ी जातियाँ दर्शन के लिये आती हैं। इस मन्दिर में बहुत से सुन्दर नक्क़ाशी किए हुए दरवाज़े हैं। मन्दिर के चारों ओर बरामदा है। जहाँ पर बाज़ार लगता है और हर तरह की चीज़ें बिकती हैं। इस मन्दिर की बनावट और दूसरे मन्दिरों से अलग है। इसका ऊँचा गुम्बद वर्गाकार है, और उसके ऊपर चबूतरे बने हैं। इन चबूतरों के चारों ओर गोलाकार सुन्दर दीवालें बनी हुई हैं।

मुख्य गुम्बद के नीचे बुद्ध जी की मूर्ति है। यह मूर्ति १२ फुट ऊँची और ठोस पीतल की बनी हुई है। यह

मूर्ति स्वर्ण-पत्रों से मढ़ी है। मन्दिर के पीछे पवित्र सरोवर हैं। इनका पानी शान्त और हरा है। इनमें बड़े बड़े कछुए बहुत बड़ी संख्या में हैं। यात्री लोग इनको देखने आते हैं और भोजन देते हैं।

पगान किसी समय में बड़ा ही सुन्दर धनी और घना बसा हुआ नगर था। किन्तु आज वहाँ मन्दिरों और गुम्बदों के सिवा कुछ भी नहीं है। ये मन्दिर तथा गुम्बद लगभग १६ वर्गमील में, फैले हुए हैं। यहाँ के निवासी अब केवल पुरोहित तथा पुजारी हैं। कहीं कहीं गरीबों के भी घर बने हुए हैं। पगान के बहुत से बौद्ध मठ इतिहास की दृष्टि से भी प्रसिद्ध हैं। आनन्द का बौद्ध मन्दिर ८०० वर्ष पहले बना था। श्वेजिगन का मन्दिर बड़ा सुन्दर है।

दुनिया की जितनी जन-संख्या है उसका तिहाई भाग बौद्ध मत वालों का है। इसी से हमको अनुमान हो सकता है कि बौद्ध धर्म कितना सुन्दर और सच्चा है। ईसा मसीह से ६०० वर्ष पूर्व हमारे महाराजकुमार गौतम ने इसकी नींव डाली। गौतम जी ने संसार के कष्टों को देख कर, निर्वाण प्राप्त करने की चेष्टा की। वे अपने राजपाट,

स्त्री और बालक को त्याग कर जंगल में चले गए। ६ वर्ष तक उन्होंने घोर तप किया। अन्त में वे बुद्ध-गया के पास एक वृक्ष के नीचे समाधि लगाकर बैठ गए। यहाँपर उनको अपने हृदय में एक प्रकाश सा जान पड़ा। उनको ज्ञान की प्राप्ति होगई। उन्हें अनुभव हुआ कि शरीर को कष्ट देने से कोई लाभ नहीं है। मनुष्य यदि सच्चरित्र, पुण्यात्मा और अन्य जीवों के प्रति दयालु हो तो मोक्ष पा सकता है। बरमा में सहन शीलता, उदारता, दीनता और ध्यान करना बालकों को बचपन से ही सिखाया जाता है। प्रत्येक बरमी बालक को कुछ समय तक मठ में रहना पड़ता है और भिक्षा माँगकर भोजन करना पड़ता है।

बरमी लोग बड़े संतोषी होते हैं। जो कुछ भी प्रकृति ने उन्हें दिया है, उसी पर वे संतोष कर लेते हैं। पुरुषों का ध्यान अधिकतर, खेल, कूद नाच, तमाशों की ओर रहता है। वे इसी में अपना समय व्यतीत करते हैं। यहाँ को स्त्रियाँ पश्चिमी सभ्यता की पुजारिन बन रही हैं। वे पुरुषों को आलसी समझतो हैं और अब वे दूसरे देश

वालों से व्याह करने लगी हैं। पश्चिमी सभ्यता द्वारा यहाँ की प्राचीन सुन्दरता नष्ट होती जा रही है।

यह देखकर दुःख होता है कि शुद्ध बरमी जाति धीरे धीरे लुप्त होती जा रही है। इसके स्थान पर एक वर्ण-संकर जाति बन रही है।

देश दर्शन

रंगून

रंगून बरमा का सबसे बड़ा और प्रसिद्ध नगर है। यह बरमा का सबसे बड़ा बन्दरगाह भी है। इस नगर से इँगलैंड को सीधे जहाज़ आते जाते हैं। यह नगर रेलों और नदियों द्वारा बरमा के भीतरी भागों से मिला हुआ है। यहाँ बहुत बड़ी संख्या में जहाज़ रोज़ाना आते जाते हैं।

बड़े बड़े लकड़ी के बेड़े इरावदी नदी में बहकर आते हैं। ये लट्ठे हाथियों द्वारा उठाकर गोदामों और लकड़ी चीड़ने वाले कारखानों को ले जाये जाते हैं। धान को साफ़ कर के चावल बनाने के यहाँ बड़े बड़े कारखाने हैं। बन्दरगाह के समीप ही बड़ी बड़ी गोदाम हैं जहाँ लकड़ी, चावल, तेल आदि सामान रक्खा जाता है। गोदामों के पीछे रंगून नगर बसा है। नगर में चौड़ी सड़कें, चौरास्ते, शानदार बंगले और दूकाने हैं। घर अधिकतर सफ़ेद रंग से पुते होते हैं। उनमें हरे रंग की खिड़कियाँ होती हैं और चारों ओर चौड़े बरामदे होते हैं। छतें बहुधा लाल खपड़ों की होती हैं। ये खपड़े सुन्दर हरी बेलों के बीच बड़े सुहावने लगते हैं। रंगून में कड़ाके की धूप होती है, धूप से बचने के लिये लोग टोपी और छातों का प्रयोग करते हैं।

रंगून के बाज़ारों में हिन्दुतानी, चीनी, जापानी, बरमी, अँग्रेज़ आदि सभी देश के निवासियों का जमघट रहता है। इन स्थानों पर तरह तरह के कपड़े और पोशाकें दिखाई पड़ती हैं। ये सभी वस्तुएँ देखकर ऐसा मालूम होता है कि रंगून बरमा का नगर नहीं है।

रंगून नगर की सड़कों और गलियों की तिजारत और सौदागरी बड़ी ही अनोखी है। किसी भी अजनबी को यह (तिजारत) देखकर बड़ा बिस्मय मालूम होगा और वह घंटों खड़ा देखता रहेगा। पानी वाला अपनी बहँगी पर पानी लादे हुए बेंचता फिरता है। उसके पीछे ही खोंचे वाले आते दिखाई पड़ेंगे। इनसे मज़दूर लोग खाने की वस्तुएँ लेकर खाते हैं। चीनी लोग सरों पर टोपियाँ लगाए ढीली ढाली पोशाक पहने पंखा और छाता बेचते रहते हैं। तरकारी, फल और बिसातखाने का सामान बेचने वाले सभी अपना अपना सामान लिए घूमते चिल्लाते फिरते हैं।

दूध बेचने वाले अपने बकरियों के समूह को लिये घर-घर दूध दुहते फिरते हैं। पहाड़ों के निवासी जंगलों के जानवर (चीता आदि) पकड़ कर लाते हैं और उनके बेचने का प्रयत्न करते रहते हैं। बैल गाड़ियों पर लोग

आते जाते दिखाई पड़ते हैं। यह बैल-गाड़ी बरमा की एक मुख्य सवारी है।

रंगून के अँग्रेज़ अफ़सर और दूसरे बाबू लोगों को दफ़्तर में बड़ा काम करना पड़ता है। वे सबेरे कुछ खाकर काम पर जाते हैं। और संध्या समय घर लौटते हैं। दोपहर का खाना वे लोग दफ़्तरों में ही खाते हैं। यहाँ गरमी इतनी पड़ती है कि सभी जगह पंखे होते हैं। ये पंखे छतों में लटकते रहते हैं और इन्हें मज़दूर खींचते हैं।

संध्या समय साहब और बाबू लोग टमटम (ताँगा) और मोटर पर अपने अपने घरों को जाते हैं। इस समय कन्टोनमेन्ट की सड़कें सवारियों और पैदल चलने वालों से भरी रहती हैं। दिन भर की गर्मी और कड़ी धूप के बाद संध्या समय ठंडी हवा चलने लगती है। हवा खाने के लिये स्त्री, पुरुष और बच्चे सभी निकलते हैं। कुछ लोग सड़कों पर टहलते हैं, कुछ टैनिस, बैडमिन्टन, पोलो और गोल्फ़ आदि खेल खेलते हैं।

डलहौज़ी पार्क रंगून का एक प्रमुख स्थान है। इस पार्क में एक सुन्दर घुमावदार झील है। इस झील के चारों ओर सुन्दर वृक्ष लगाये गये हैं। झील में

कमल के फूल लगे हुये हैं। छोटी छोटी नावें और बोट हैं। यहाँ बैठ कर लोग सैर करते हैं। वहाँ पर बोटिंग क्लब भी है। जल में भाँति भाँति के पक्षी किलोलें करते रहते हैं। इस पार्क को जाने वाले मार्ग सवारियों और पैदल चलने वालों से भरे रहते हैं। बहुत से लोग बांधों पर खड़े होकर गप-शप करते या गाना सुनते रहते हैं। यहीं छोटे बच्चों को आया (दाई) टहलाने लाती है। बौद्ध भिक्षु भी पीले कपड़े पहने आते जाते दिखाई पड़ते हैं। पगोडों में संध्या समय गाना बजाना और प्रार्थना होती है। यहाँ का सूर्यास्त बड़ा ही सुहावना होता है। जब सूर्य पगोडों के पीछे छिपता है तो झील के तट का दृश्य बड़ा ही रमणीक हो जाता है।

रंगून में जिमखाना या पेगू क्लब और बोट क्लब में स्त्री-पुरुष सभी इकट्ठा होते हैं और आनन्द पूर्वक आमोद-प्रमोद में समय व्यतीत करते हैं।

सूर्यास्त के कुछ समय बाद ही सरदी पड़ने लगती है। इसलिये मोटे और गरम कपड़े पहिनना या शाल-दुशाले ओढ़ना आवश्यक हो जाता है।

बरमा की सैर

"भूगोल" में प्रकाशित यात्रा क्रम के अनुसार पन्द्रह मई को सबेरे ही कलकत्ता पहुँच गया। यात्रा में सम्मिलित होने वाले मित्रों की प्रतीक्षा करना भी आवश्यक था। इसलिये पन्द्रह तारीख को छूटने वाले जहाज़ से जाना न हो सका। केवल छूटने वाले जहाज़ के दर्शन कर लिये। दूसरा जहाज जो डाक का जहाज़ था १७ को छूटा। रंगून के लिये टिकट १४ रुपये में १६ मई ही को ले लिया। यह दिन बनस्पति-उद्यान (बोटेनिकल गार्डन) में बिताया। रेल की यात्रा से थके हुए और कलकत्ते के कोलाहल भीड़ और गन्ध से व्याकुल मनुष्य के लिये बगीचे की हरी बेंचों पर दो चार घण्टे बिताना बड़ा ही सुखप्रद लगता है। स्वच्छ पानी की कमी है। हुगली या हुगली ही के जल से प्रवाहित बनावटी झीलों ही की शरण लेने से प्यास बुझ सकती है। जिन्हें साफ़ पानी पीने की बान है वे एक दो कच्चे नारियल को कटवा कर उस के जल से प्यास दूर करते हैं। छाया ख़ूब शीतल है हवा भी अत्यन्त मनोहर है। जगह जगह कुञ्ज हैं। सड़कें बड़ी साफ़ हैं। दृश्य कृत्रिम होते हुये भी सुहावना है। यहां बड़ी सुगमता से आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अमरीका, अफ्रीका, बर्मा, पूर्वी और पश्चिमी द्वीप समूहादि सभी जगह के पेड़ एकदम हरे भरे रहते हैं। दिन ढले ६ पैसे में चांदपाल घाट का टिकट लिया और नूरजहां स्टीमर पर सवार होकर डेरे पर पहुँच गया।

दूसरे दिन सबेरे सात बजे ही जहाज़ घाट पर पहुँचा। आठ बजे नाम मात्र को डाक्टर ने जांच की। फिर तुरन्त जहाज़ पर
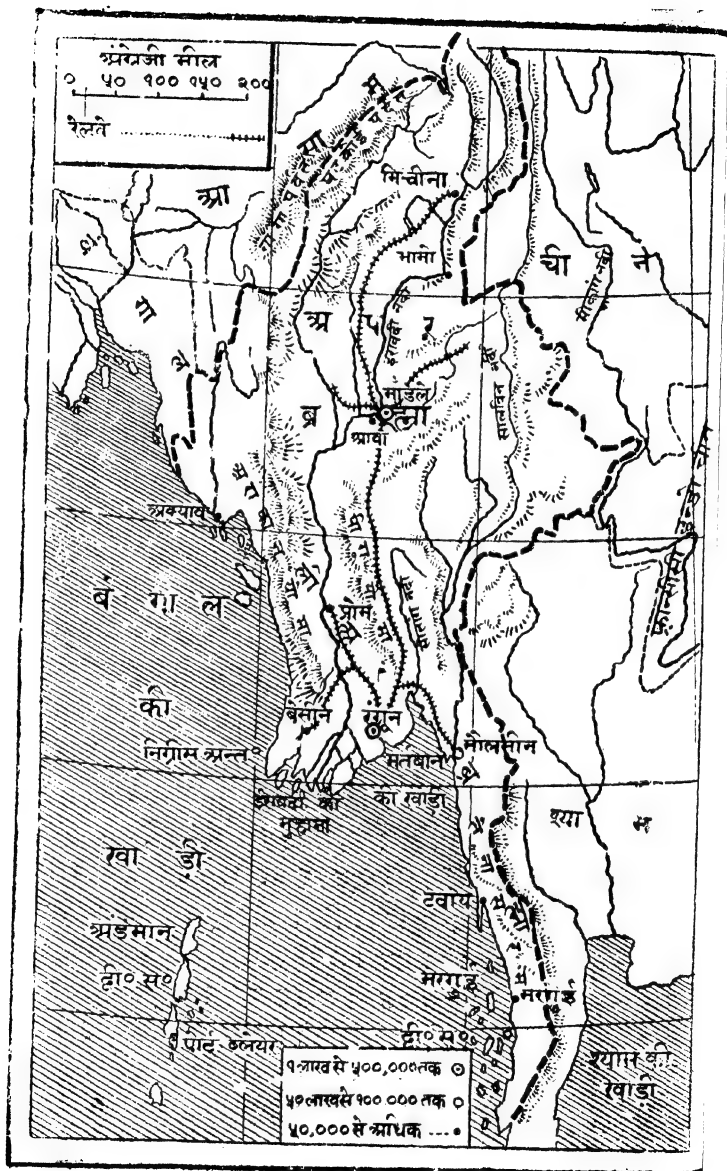
सवार हो लिया। दस बजे के लगभग जहाज़ ने सीटी दी। चार पांच मील चलने के बाद बोटेनिकल गार्डन के सामने जहाज़ ने लंगर डाल दिया। जब दो बजे डांक आई तब जहाज़ चला। प्रधान कलकत्ता तो पीछे छूट गया। पर उसी के सम्बन्ध में हुगली के दोनों ओर बहुत दूर तक जूट मिल और ईंट के भट्टे थे। जब हमारे संयुक्त प्रान्त में हरियाली प्रायः झुलस गई थी, उसी समय यहां हरियाली की भरमार थी। नीचे आते आते कई धाराएँ हुगली से इधर उधर को गईं। गंगासागर पर चौड़ाई कई मील की थी। पानी का स्वाद खारी होते हुए भी रंग मटीला था। यही मटीला रंग खाड़ी के अधिकांश जल था।

समुद्र में प्रवेश होते ही हिंडोले का सा अजब झूलना आरम्भ हुआ। आँधी इतने ज़ोर से आई कि चटगांव वाले मुसलमान मल्लाहों को पाल खोलना पड़ा। लहरें ऊँची उठ रही थीं। जहाज़ का इधर उधर झूमना घड़ी के लटकन के समान लगातार जारी रहा। पहिले तो यह बहुत अच्छा लगा। पर संध्या समय ज्योंही मैं ऊपरी डेक से निचले डेक में टट्टी गया कि बहुतों को वमन करते देख मेरा जी मिचलाने लगा। ऊपर आने पर उबकाई आने लगीं और कै हो गई। कुल्ला करके चुपचाप अकेला लेट गया (पाल उतरते ही सब लोग निचले डेक पर चले गये थे) सबेरे खूब दिन चढ़े उठा। अब समुद्र का जल इतना अधिक नीला था कि काला मालूम होता था। इसी से यह भाग काला पानी कहलाता है। साधारण नीला और मटीला पानी बहुत पीछे रह गया था। टट्टी जाते समय फिर उबकाई आई। ऊपर आकर कसरत करने का प्रयत्न किया पर जी न लगा फिर लेट गया। शाम को टट्टी जाकर और नहा

कर फिर सो गया। आज कुछ भी भोजन नहीं किया। रात को कुछ पानी भी बरसा। सबेरे हरियाली मायल नीले जल के दर्शन हुये। आज मन में अचानक खुशी थी। शौचादि से निपटते ही भूख लगी। थोड़ी कसरत करने के बाद पास बंधे हुए केला, सन्तरा, छुहारा आदि फल खाये। दिन में थोड़ी गरमी के उपरान्त फिर पानी गिरा। दोपहर के बाद भूमि के चिन्ह दिखाई दिये, पानी का रंग मटीला था। दो एक जहाज़ों के मस्तूल और चिड़ियों के दर्शन हुए। चार बजते बजते बरमा का हरा भरा तट साफ़ दिखाई देने लगा। अब जहाज़ वास्तव में रंगून की खाड़ी में चलता था। तीन दिन लगातार नीले आकाश और नीले समुद्र से घिरे रहने के बाद स्थल की क़दर जान पड़ी। यों तो बरमा का यह तट कुछ सुहावना नहीं है। बहुत ही नीचा, नम और छोटे छोटे झाड़ों से घिरा है। आगे चलकर न्यूयार्क और स्काटलैंड की कम्पनियों के तेल की टंकियाँ थीं। कहीं कहीं लट्ठों के ढेर थे। स्वर्ण पगोडा के दर्शन पहिले ही हो चुके थे। यहां से कई मील पहिले रंगून के पायलट (खेवट) की देखभाल में जहाज़ हो गया। अब पोर्ट हेल्थ आफ़िसर के साथ खुफ़िया पुलिस वाले भी आ गये। खद्दर भेष जुर्म की निशानी थी। दो बार पता वग़ैरह लिया गया। फ़र्स्ट क्लास पैसेंजर तो जेटी पर से उतर गये। डेक वाले मुसाफ़िरों को अलग स्टीमर पर चढ़ कर हेल्थ स्टेशन पर जाना पड़ा। यहां चेचक का टीका दिखाकर सब लोग नंगे बदन गुज़रे। थोड़ी दूर चलकर मैंने भी ब्राह्मण सभा में विश्राम किया।

रंगून (बरमा की राजधानी) रंगून नाम की नदी के दोनों ओर बसा हुआ है। यहीं पीगू नदी का भी सङ्गम है। यहां का पंजुडांग

सिरा समुद्र से केवल २१ मील दूर है। शहर का अधिकांश भाग उत्तरी किनारे पर बसा हुआ है केवल बाहरी मुहल्ला दक्षिण की ओर बसे हैं। सिरियम जहां तेल का सब से बड़ा कारखाना है पंगू नदी के सामने है। जन-संख्या के अनुसार भारतवर्ष के समस्त शहरों में रंगून का छठवां स्थान है। १९३१ ई० में इसकी जन-संख्या तीन लाख चालीस हज़ार के लगभग थी। बन्दरगाह की हैसियत से रंगून का तृतीय स्थान है। शहर के तीन भाग हैं— बन्दरगाह, शहर और छावनी। पोर्ट का प्रबन्ध पोर्ट ट्रस्ट के हाथ में है जो रोशनी पीपे, गोदाम और घाट को देख भाल करता है। यहां छोटी सो नावों से लेकर बड़े बड़े जहाज़ों की भीड़ लगी रहती है। सङ्गम के सामने कीचड़ की मात्रा बढ़ रही है जिससे उतार के समय ही में बड़े बड़े जहाज़ों का आना जाना हो सकता है। आने जाने वाले मुसाफ़िरों की संख्या बहुत है पर चावल, लकड़ी और तेल ले जाने वाले जहाज़ों की संख्या और भी बढ़ी हुई है। इन चीज़ों की रफतनी के लिये रंगून दुनिया भर में प्रसिद्ध है।

शहर के आलीशान भवन भारत के और शहरों की अपेक्षा किसी भांति कम नहीं हैं। हां लकड़ी की अधिकता होने से मकानों का प्रधान अंग लकड़ी ही है। सड़कें ख़ूब चौड़ी सीधी, साफ़ हैं। वे बिजली से प्रकाशित हैं। इनके दोनों ओर पेड़ लगे हैं। किसी एक सड़क के बीच से शहर के आदि अन्त का पता लग सकता है। पानी अकसर बरसता है। पर सड़कों पर कीचड़ नहीं होती। यहां सब मिला कर ११ बाज़ार हैं जिनमें छोटे छोटे खिलौने से

लेकर हाथी तक मोल लिये जा सकते हैं। रेशमी बाज़ार तो देखने ही योग्य है।

छावनी का प्रबन्ध फौज के अधिकार में है। ट्रामगाड़ी शहर के प्रायः सभी भागों में पहुँचती है। पर यहां कलकत्ते की सी भीड़ नहीं होती। बरमी स्त्रियों को टिकट जांचने पड़तालने का काम पहले पहल मैंने यहीं देखा। पगोडा की ओर सबसे अधिक लोग आते हैं। ट्रामगाड़ियों के होते हुये भी घोड़ा और बैलगाड़ी का अभाव नहीं है। जिन भागों में ट्रामगाड़ी नहीं पहुंचती है वहां गाड़ीवान मनमाना किराया वसूल करते हैं। सबसे अधिक पीड़ा-जनक और लज्जास्पद दृश्य तो रिकशा वालों का है। बहुत से हमारे चटगाइयां भाई एक या दो सवारी को बिठाकर भीगी सड़कों पर घोड़ों के साथ दौड़ते हैं। विवाहादि अवसरों पर पालकी या डोली में बैठे आदमी को आदमी की सवारी करते तो देखा था। मसूरी आदि पहाड़ी शहरों की ऊंची नीची और उतार चढ़ाव वाली सड़कों पर रिकशा का चलना भी समझ में आ सकता है। अधिक धनी, बुड्ढे और कमज़ोर लोगों के लिये गाड़ियों के अभाव में यही एक सुलभ वाहन है। पर रंगून जैसे समथल शहर में बैल और घोड़ों की जगह मनुष्यों को जोतते देख किस भारतीय का सिर लज्जा से नीचे न झुकेगा। सवारी लेने वाले केवल अभि-मानी गोरे ही हों सो भी बात नहीं है। बहुत से बरमी और कुछ हिन्दुस्तानियों को भी बिचारे चटगाइयाँ लोगों पर सवारी लेते देखा है। चटगाइयाँ लोग विकट ग़रीबी की दशा में यहां पहुंचते हैं। कला-कौशल जानते नहीं मज़दूरों की भरमार है और काम मिलता नहीं इसलिये चीनी बढ़इयों से झट दो पहिये वाला हलका रिकशा

बनवाकर पशुओं का काम करने को तयार हो जाते हैं। जो लोग उनको जोतने के लिये तयार हो जाते हैं उनसे वे बड़े खुश हो जाते हैं। जहां एक दो आने वाली सवारी देखते हैं वहां वे लोग उसे अपने अपने रिकशा में बिठाने के लिये झगड़ने लगते हैं। पेट के लिये जो कुछ करना पड़े सब थोड़ा ही है! पीगू और प्रोम नगरों में हमारे बहुत से भाइयों को यही करना पड़ता है। यह माना कि फ़ैशन के झूठे पुजारी कीचड़ में पैदल चलना पसन्द नहीं करते पर उन्हें अधिक खर्च करके घोड़ागाड़ी में जाना चाहिये। फिर सवाल रह जाता है काम का। अगर बेकारों को काम में लगाने के लिये रंगून में एक सूचनालय खोल दिया जावे तो बेकारों की संख्या बहुत कम हो जावे। अगर मुफ़्त में कुछ देशसेवी अपने फुरसत के घंटों में यह काम कर दें तो सबसे अच्छा नहीं तो पैसा (कमीशन) लेकर इस काम के करने में बुराई नहीं है। पर किसी तरह से हो इस कुप्रथा का दूर होना आवश्यक है। रंगून की सैर करने वाले विदेशियों में भारतीयों के प्रति अपमान और घृणा के भाव फैलना साधारण सी बात है।

रंगून में हरे भरे मैदान और सैर करने लायक़ बगीचों की इतनी अधिकता है कि स्वर्णपगोडा के ऊँचे भाग से शहर पर एक नज़र डालने से ऐसा मालूम होता है मानो हरियाली के बीच बिखरे हुये घरों से कुपित होकर प्रकृति देवी उन्हें निगलना चाहती है। घुड़दौड़, पोलो, गोल्फ और फुटबाल के अनेकों मैदान हैं। एक मैदान तो विशेषकर वर्षा ऋतु के लिये ही बनाया गया है। बरमा एथलेटिक एसोशियेशन के विशाल मैदान में क्रिकेट, फुटबाल आदि कोई न कोई खेल होते ही रहते हैं।

डलहौज़ी पार्क और रायल झील शहर के अत्यन्त सुन्दर भाग हैं, झील विषम आकार की है, १६० एकड़ क्षेत्रफल में पानी है, २०० में पेड़ और घास है। हफ्ते में एक दो दिन बैंड भी बजता है। पर पूर्णमासी के दिन विशेष आनन्द होता है, झील के आर पार स्वर्णपगोडा ऐसी छटा धारण करता है, जिसे भूलना असम्भव है। यहीं बोटक्लब भी है। लोग कसरत और मनोविनोद के लिये अकसर नाव खेते हैं।

उत्तर की ओर और आगे चलकर विशाल विक्टोरिया झील है। इसमें ६०० एकड़ से भी अधिक पानी है। यहां से दस मील पर मिंगलाडन रेस कोर्स है। इस मार्ग का दृश्य अत्यन्त मनोरम है। रेल द्वारा सुगम भी है। इसलिये अकसर लोग यहां सैर के लिये जाते हैं। पर भूगोलप्रेमी के लिये यहां के कृषि-उद्यान और चिड़ियाघर बड़े महत्व के हैं। कृषि-उद्यान में तरह तरह के फल और फूल के पेड़ हैं। बहुत से बिकने के लिये भी हैं। यदि साधारण किसान यहां की नवीन वैज्ञानिक शैली का अनुसरण करे तो बहुत कुछ लाभ उठा सकता है।

चिड़ियाघर का संक्षिप्त विवरण शायद पाठकों को भी रुचिकर होगा। यह स्थान कृषि-उद्यान (Agri-horticultural-Society) के बग़ीचे से लगा हुआ है, बीच में केवल एक छोटी सी दीवार है। दोनों शहर से कुछ दूर बाहर मैदान में हैं। एक ओर प्रवेश करने पर तरह तरह की चिड़ियाँ मिलती हैं। जावानी पेरेकीट और सुग्गा का निवास-स्थान जावा, सुमात्रा और बोर्नियो है। सिर पर कलंगी वाला सुग्गा भारतवर्ष और लंका में मिलता

है। इसका घर बांस का बना था। घोंसला खजूर का था और भोजन के लिये गेहूँ, चना, जौ, और आम रक्खे थे।

पीले छोटे सुग्गे पास के दूसरे मकान में थे। बिचारे आस्ट्रेलिया से लाये गये थे। इन्हें छोटे छोटे कोदों के दानों पर निर्वाह करना पड़ता था। नील मुकुट लटकने वाले सुग्गे का निवास-स्थान मलक्का है। इसको गर्दन लाल, पूंछ हरी और सिर नीला होता है। निवास औरों की भांति इसका भी बांस का बना था। पर भोजन के लिये इसे भात मिलता था। यह क़द में कौवे से कुछ ही छोटा था। आगे चलकर बरमा भर में मिलने वाले लाल चोंच और नीले शरीर वाले पपीहे (Magpie) के दर्शन हुए। इसको खाने के लिये गूलर रक्खे थे। पास जाते ही चिल्लाने लगी। मानो मुझसे स्वतन्त्रता के लिये प्रार्थना कर रही हो अथवा मुझे ही परतन्त्र देख तरस खाती हो।

कुछ दूर पर गंधक के समान छाती वाली टौकान थी। इसे अपनी जन्मभूमि मैक्सिको को छोड़ यहाँ बन्दी होना पड़ा। इसे भोजन को पावरोटी मिलती थी। इसका घोंसला सन्दूक के समान बना था। आस्ट्रेलिया से कई चिड़ियां लाई गई थीं। पनेन्टस पेरेकीट को भोजन के लिये मूंगफली, कोदों और खली दी जाती थी। रोजेला पेरेकीट को कोदों पर निर्वाह करना पड़ता था। लाल पेरेकीट को गेहूँ, मकई और चना दिये जाते थे। कोकेटील का भी भोजन कोदों और घर काठ का था। इनके अतिरिक्त सुग्गा, तोता और मैना के दर्शन किये। लाल नीली मैना का प्रायः सारा शरीर लाल था। केवल पूंछ नीली थी। इसे आम, गेहूँ, जौ, चना और मूंगफली का भोजन मिलता है।

देश दर्शन

गैंडा नैपाल से लाया गया था। इसके हाथी के समान चिरे और गद्दीदार सुम (खुर) थे। सींग छोटा सा था। ओंठ के ऊपर नाक की सीध में और आंख के नीचे उठा हुआ था। पंछ बहुत पतली थी। सिरे पर एक दो बाल भी थे। खाल में झुर्रियाँ पड़ी हुई थीं। यह चकत्तेदार थी। पैर छोटे थे जो दो फुट से अधिक ऊँचे न थे। सारे बदन की लम्बाई ढाई तीन गज़ के लगभग थी। जंघों पर काले काले छोटे बाल थे। इसकी गरदन हाथ डेढ़ हाथ की थी। रंग खाकी, भूरा और तांबे के समान था। जो मक्खियां इसके शरीर पर बैठतीं थीं वह उनके उड़ाने का कुछ भी प्रयत्न नहीं करता था। जिसके चमड़े से ढाल बने अथवा जो शेर के पंजों से भी न डरे, उसे मक्खियों की क्या चिन्ता! अथवा यह वीर जन्तु अपनी शक्ति को अपने बराबर वाले ही पर दिखाना पसन्द करता था, छोटों पर नहीं। मक्खियों को उड़ाने के लिये उसके पास कोई साधन भी नहीं दिखाई देता था। उसकी पीठ पर मट्टी लगी हुई थी और वह पड़रे (भैंस के बच्चे) के समान शब्द करता था। और इधर उधर सांस से बड़ी दुर्गन्धि निकलती थी। खाने को गूलर और कटहल के पत्ते पड़े थे। वह पत्ते तो खा लेता था पर डंठल छोड़ देता था। इसके रहने के लिये पेड़ की छाया थी और घर भी बना हुआ था। किलोल करने के लिये हरे पानी का कुण्ड था। पास ही जल-हस्ति का घर था। पहिले मैंने जल-हस्ति के बच्चे ही दर्शन किये क्योंकि वृद्ध माँ बाप कोठरी के अन्दर थे। इसके अगले भाग का रंग सफेद और पिछले का काला था। दुर्गन्ध इनकी कोठरी से भी खूब आती थी। खाने को वही कटहल की पत्तियाँ थीं। इस प्रकार इस भाग को छोड़ आगे

बरमी भिक्षुओं की एक मंडली
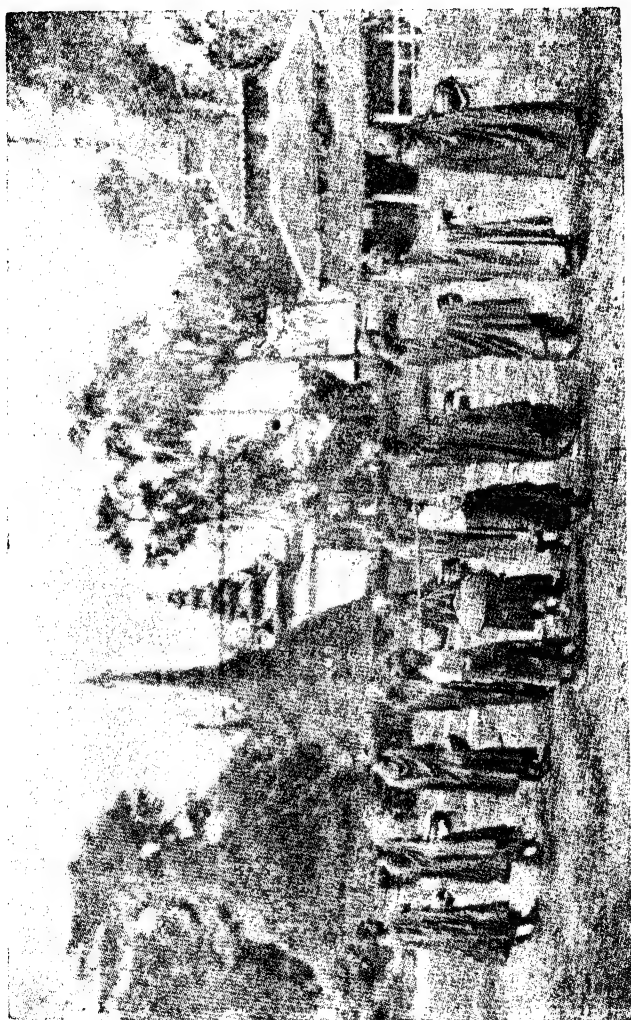
बरमी लोग बड़े ही सङ्गीत–प्रिय होते हैं। गाने और बैंड बजाने में सारी रात बिता देना कोई असाधारण बात नहीं है।
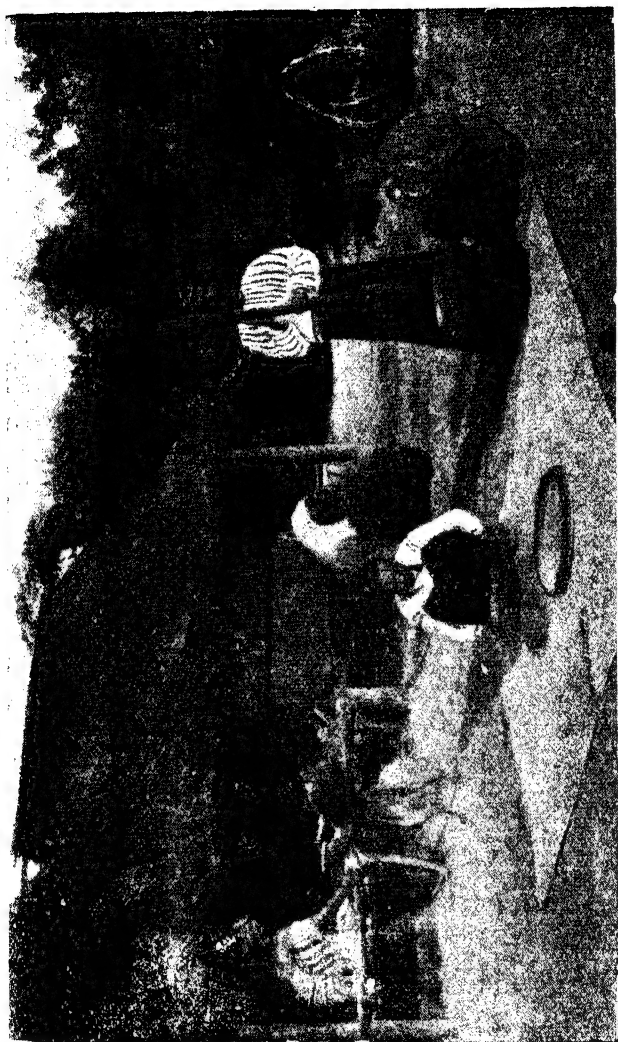
बर्मी घर—यह बांस और घास-फूस का बना होता है। धान कूटने और पानी रखने का ढंग इस चित्र में ध्यान देने योग्य है।
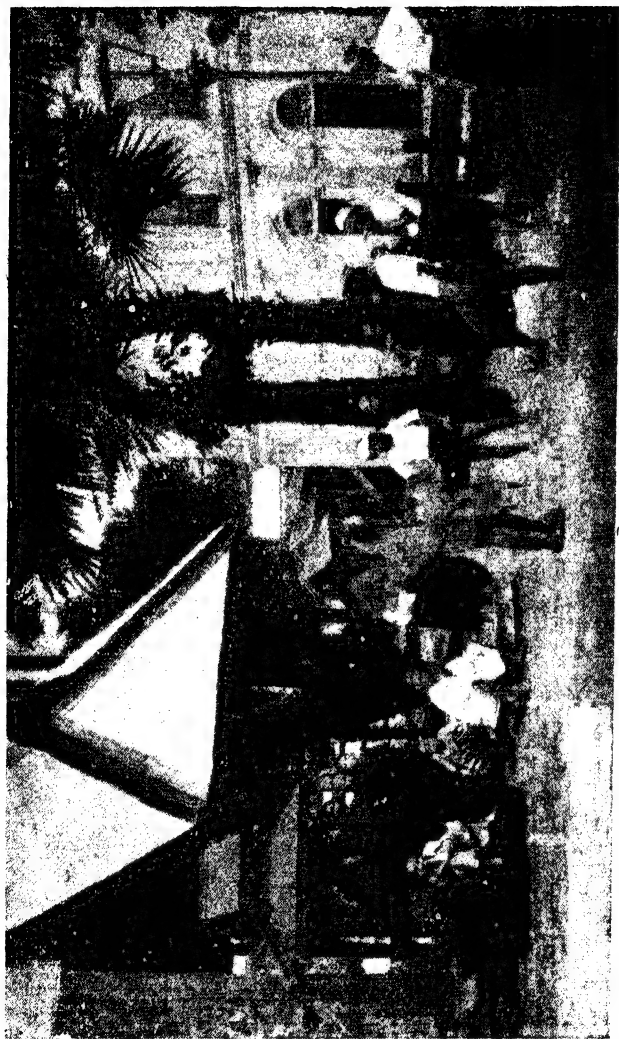
बरमा के प्रायः प्रत्येक बड़े नगर में इस प्रकार फुटबाल खेलने वाली मंडली मिलती है। जहां तक होता है खिलाड़ी इस हलकी बेंत की गेंद को ज़मीन पर नहीं गिरने देते।

न्यू गिनी का कलंगीदार कबूतर था। इसके भोजन के लिये भी गेहूँ, चना और मकई रक्खे थे। यहां पर इसका मित्र आस्ट्रेलिया निवासी मुर्गा था जो भात खाना पसन्द करता था। इसके आगे एक बड़ा अजदहा था जिसकी जन्मभूमि बरमा में ही थी और जिसको मैंने इरावदी के किनारे वाले एक गाँव के पास स्वतन्त्र दशा में भी देखा था।*

आगे चलकर केनरी द्वीप की काली और सफेद तेलिन, जावा की बया, विचित्र उल्लूक और सारस के दर्शन हुए। फिर बनबिलाव अपनी तंग कोठरी में चौकड़ी भरता मिला। खाने के लिये यहाँ भी उसका स्वाभाविक भोजन अंडा और केला नियत समय पर मिलता था। इसी पंक्ति में अण्डमान द्वीप का सुअर, बेअरकैट, चीता, सिंह, बघेरा आदि अपना अपना भीषण नाद कर रहे थे। काले ओंठ, झाड़ीदार पूंछ वाला (कुत्ते से कुछ छोटा) गीदड़ अपनी धुन में चक्कर लगा रहा था।

कंगारू का बच्चा घास चर रहा था, अगले पैर उठाकर पिछली टाँगों से छलांगता था। रेत मिला हुआ चना और मकई पास ही उसके खाने के लिये पड़े थे। मलय द्वीप की काली गिलहरी का पेट ही भूरा था शेष शरीर काला था, इसका भोजन केला, मूंगफली, भात, भीगा चना था। यह बड़ी ही चंचल थी। मैंने इसके घर के सामने केवल दो ही मिनट लगाये पर इतने ही में यह कई बार अपने काठ के सन्दूक में घुसी और निकली। गिनी पिग (सुअर) पयाल, घास और चनों पर निर्वाह करते थे। इनका

* ६२ पृष्ठ में रिक्शा खींचने वाले को कोनाड़ा निवासी कुरङ्गी पढ़ना चाहिये न कि चटगाइयाँ।

रङ्ग चितकबरा था और ये चूहे से कुछ ही बड़े थे। खरहे सफेद और लाल रङ्ग के थे। इनकी काली आंखें बड़ी मनोहर थीं।

बरमा, मलय द्वीप, सुमात्रा और जावा द्वीप में निवास करने वाली सेही की पूंछ झाड़ीदार थी। कोचीन और ट्रावनकोर के बन्दर की पूंछ सिंह की पूंछ से मिलती जुलती थी। पूर्वी और पश्चिमी अफ्रीका का हरा बन्दर और हिमालय का पहाड़ी बन्दर भी यहीं था। ढाल पर योरुप का चकत्तेदार हिरण था। उसकी जाति वाले दूसरे देशों के बारहसिंहे भी यहां उससे आ मिले थे।

बिसन भैंसे के आकार का था। इसके पैर सफेद थे, सींग पतले और मुड़े हुए थे, एक दो के सींग सीधे नोकदार थे। ये कुट्टी खा रहे थे।

ईमू को देखने की इच्छा बहुत दिनों से थी। वह आज पूरी हुई। इसकी गरदन लम्बी और ऊँची होती है। पैर कम मुड़ते हैं। तीन पंजों में बीच का सबसे बड़ा होता है। बाल रेशेदार और बड़े ही सुहावने होते हैं। यह ईमू कभी कभी चोंच से पीठ खुजलाता था, पानी पीने के लिये चोंच में भरकर ऊपर लाता था फिर निगल लेता था। ऐसा इसने चार पांच बार किया। केला, दाना और घास खाता था। इस बार मादा बीमार थी, इसके घुटने के नीचे का भाग ऊपर से बहुत लम्बा था। रङ्ग खाकी और काला था चोटी सफेद थी। और छोटी सी कलंगी थी। आंखें हिरण के बच्चे के समान थीं। चोंच पतली और त्रिभुजाकार थी। गरदन तीन इंच से अधिक व्यास में न होगी, गरदन नीचे की ओर आसमानी रङ्ग की थी। पंजे से चोटी तक मेरे कन्धे के बराबर आता था।

पूंछ बहुत ही घने बालों से लदी थी। चोंच के ऊपर नथुने

और कान भी अलग दीखते थे। इस समय मिट्टी चुग रहा था। पीठ पर मांग सी थी। चलते समय इसने कुछ शब्द भी किया। इसके घेरे में कुछ हिरण भी थे। जब एक बारहसिंहा को चुपकार मैंने खुजलाया तो सब के सब सींकचे पर आ गये और प्रेम की दृष्टि से खुजलाने के लिये आग्रह करने लगे। बच्चे का प्रेम सब से अधिक था। सींकचा पार करके साथ चलना चाहता था।

इस प्रकार यह सन्ध्या रंगून में बड़े आनन्द से बीती। पर यह विचार सदा मन को घेरे रहा कि सुन्दर घर और भोजन के होते हुए भी पराधीनता के कारण इन जानवरों का स्वास्थ्य और जीवन बहुत कम हो गया है।

चिड़ियाघर से निकल मैंने जगत् प्रसिद्ध बुद्ध-मन्दिर की राह ली। इसका वर्णन मैं अपने मित्र श्रीयुत हरिवदन शर्म्मा जी के चुने हुए शब्दों में देता हूँ।

श्वेडगों पगोडा

"बर्म्मा में देखने योग्य सर्वोपरि एकमात्र इस देश के मन्दिर हैं, जिनको बरमी भाषा में "फया" कहते हैं। नदी के तट, पहाड़ की चोटी, गांवों के आस पास शहरों के बीच जहां देखें झुंड के झुंड, शिखर दीख पड़ते हैं। इनको जो अपनी आँखों से एक बार देख चुके हैं, वे ही जान सकते हैं। हमारे देश के मन्दिरों में जैसा कांव कांव हुआ करता है, वहां की दशा ठीक उसके विपरीत है। यहाँ पंडे तो देखने को भी नहीं मिलते घड़ी। घन्टों के गगन-भेदी शब्द नाम के लिये भी कहीं नहीं सुन पड़ते। चारों तरफ शान्ति-पूर्ण निस्तब्धता छाई रहती है। यहाँ तक कि हवा चलने पर मन्दिर के शिखर पर लगी हुई क्षुद्रघण्टिकाओं का

मधुर-रव ही सुनाई पड़ता है। सम्पूर्ण देश-देशान्तर के भ्रमण-कारी व्यक्तियों के मुख से सुना जाता है कि, यह मन्दिर सारी पृथ्वी में एक अद्भुत वस्तु है। इसकी शिल्प चातुरी तथा सौंदर्य यहाँ के प्राचीन चारुकार्य्य का जीता जागता नमूना है। यह शिल्पियों के तो देखने योग्य है।

रंगून ❀ शहर के उत्तर-पश्चिम कोण पर थिनगटर नाम का एक पहाड़ है। इसी पहाड़ पर पृथ्वी के धरातल से ५०० फुट ऊँचा यह पगोडा बना है। लोगों का कहना है कि गौतमबुद्ध ने 'तपोसा' और 'पलोका' नामक अपने दो शिष्यों को अपनी दाढ़ी के आठ बाल दिये थे। उन दोनों शिष्यों ने एक सोने के डिब्बे में बन्दकर इस पर्वत पर स्थापित किया। इसके ऊपर इस मन्दिर की रचना हुई। संसार में जितने बौद्ध मन्दिर हैं, उनमें यही सर्वप्रधान समझा जाता है। यहाँ प्रतिवर्ष चीन, जापान, कोरिया और श्याम आदि देशों से हजारों बौद्ध यात्री दर्शन की अभिलाषा से आते हैं।

मन्दिर का शिखर भाग सोने के पत्रों से मढ़े रहने के कारण इसे श्वेडगों अर्थात् स्वर्ण-मन्दिर कहते हैं। प्रातः और सायंकाल भगवान् सूर्य्यदेव की कोमल किरणों से मन्दिर की छटा अलौकिक मालूम पड़ती है। इस मन्दिर से शहर थोड़ी ही दूर

❀ रंगून का शुद्ध रूप है यां+गौं=यांगौं; यां—गोली बारूद गौं—चुक गया। शत्रुओं से युद्ध करते समय यहां गोली बारूद चुक गई थी, तभी से इस स्थान को यागौं कहने लगे। अँग्रेज़ों के उच्चारण में रंगून कहा जाने लगा। 'यांगौं' वास्तव में 'र' लिपि से लिखा जाता है किन्तु बर्म्मी लोग 'र' को 'या' उच्चारण करते हैं। जैसे 'राम' का 'यामा' और 'रोग' का 'योगा' उच्चारण करते हैं।

पर है। यात्रियों को आने जाने के लिये मन्दिर के द्वार तक ट्राम-गाड़ी गई है। प्रतिदिन चार पाँच हजार यात्री आते जाते रहते हैं। मन्दिर के चारों तरफ चहारदीवारी और चार चार फाटक बने हुए हैं। इनमें दक्षिण का फाटक विशेष प्रशस्त और सुन्दर है। ट्रामगाड़ी से उतर कर यात्री इसी फाटक से अन्दर घुसते हैं। फाटक के दोनों तरफ़ दो विशाल सिंह-मूर्तियां द्वारपाल के रूप में बनाई गई हैं। इन सीढ़ियों के ऊपर टीन का छत लगा हुआ है। सीढ़ी के दोनों किनारों में यात्रियों के बैठने का प्रबन्ध और पद पद पर दुकानें हैं। इन दुकानों में माला, फूल, धूप, मोम-बत्ती आदि पूजा की सामग्रियाँ बिकती रहती हैं। इन दुकानों पर इस देश की स्त्रियाँ बड़े सज-धज के साथ बैठी रहती हैं। विदेशी यात्रियों को टूटी फूटी हिन्दी भाषा में पुकारा करती हैं—'बाबू फूल मांगता ! क्या माँगता ! बाती मांगता !—इन दुकानों में घण्टे, बुद्धदेव की मूर्तियां, भिन्न भिन्न प्रकार के चित्र आदि भी बिकते रहते हैं।

ऊपर पहुँच जाने पर एक मन्दिर है। जिसमें सङ्गमरमर और पीतल की छोटी बड़ी अनेकों मूर्तियां हैं। इन्हें देखने से मालूम होता है कि भगवान बुद्धदेव शान्त रूप से स्वस्तिकाशन मारे बैठे हुये शिष्यों को उपदेश कर रहे हैं। सभी मूर्तियाँ इसी भाव को लेकर बनाई गई हैं। इनके सिवाय और भी सैकड़ों मूर्तियां इसी प्रकार की हैं।

मन्दिर की बनावट ठीक घण्टे की तरह है। तलभाग गोल और यथाक्रम ऊपर को पतला होता चला गया है। इस मन्दिर के चारों तरफ छोटे बड़े बहुत से मन्दिर बने है। इन मन्दिरों

और मन्दिर के बीच एक परिक्रमा रूप में सङ्गमरमर की सड़क बनी हुई है। गरमी के दिनों में यह बहुत गरम हो जाते हैं, पांव न जलाने के लिये इस पर टाट के फ़रश बिछाये जाते हैं। थूकने के लिये जगह जगह टीन के गमले रक्खे गये हैं।

मन्दिर की ऊँचाई प्रायः ३७० फुट है। इसके शिखर पर एक सोने का छत्र लगा हुआ है। इस छत्र को मांडले के राजा भिन्दनमीन ने किसी एक मेले के समय दान दिया था। इसके किनारों में मोती आदि मूल्यवान रत्न जड़े हैं। इसका मूल्य ७-८ लाख रुपया बताया जाता है। मन्दिर में बिजली बत्ती का प्रकाश किया जाता है। शिखर का समस्त भाग बिजली-बतियों से घिरा हुआ है।

रात को सोने के ऊपर बहु-संख्यक बिजली बत्तियों का प्रकाश पहाड़ी के ऊपर होने के कारण कई मीलों तक जगमगाता हुआ दीख पड़ता है।

पूजा के समय किसी प्रकार का हुल्लड़-गप्पड़ नहीं होता, लोग शान्तिपूर्वक आकर घुटना नवाकर बैठते और स्तोत्र पाठ करते हैं। स्त्री, पुरुष जिसका जहां जी चाहे बैठता है, किसी को किसी तरह की रोक-टोक नहीं होती।

मन्दिर के भीतर दर्शनीय वस्तु एक घण्टा है। इसका वजन ८११५ मन है। इसे थाराबार्डा के राजा ने सन् १८८० ई० में दान दिया था। जो मन्दिर के भीतर जाते हैं सभी इसे एक बार बजा देते हैं। यह दन्तकथा है कि "विदेशी इसे जितनी बार बजाते हैं उन्हें इस देश में उतनी बार आना पड़ता है"।

रंगून विशाल नगर है सही पर इसे आदर्श बरमी शहर सम-

भना भूल है क्योंकि इसमें बम्बई कलकत्ते की भाँति हिन्दुस्तानी, लङ्कावासी, अमरीकन, योरोपियन, यूरेशिन, चीनी, जापानी, यहूदी आदि दुनिया की प्रायः सभी जातियों का निवास है। इस आकर्षणशक्ति का मूल कारण यहां का लाभदायक व्यापार है इसी व्यापार के लोभ में फँसकर अठारहवीं सदी के अन्त में ईस्ट-इण्डिया कम्पनी ने अपना कारखाना खोला। पर १८५२ ई० तक यह एक साधारण नगर था, इस वर्ष से इसकी काया पलट गई और अब तो यह एशिया के नामी नगरों में से एक है।

दूसरे दिन दोपहर की गाड़ी से पीगू के लिये प्रस्थान किया। गाड़ी पर बिठाने और टिकट आदि मंगाने का प्रबन्ध श्रीमान् दुबे जी ने ब्राह्मण सभा के उत्साही कर्त्ताओं से करवा दिया। यह सभा हिन्दुस्तानी भाइयों को कठिनाइयों में यथाशक्ति सहायता तो पहुँचाती ही है इसके अतिरिक्त पुस्तकालय, वाचनालय और रात्रि पाठशाला द्वारा विद्या प्रचार में यह जी तोड़ प्रयत्न करती है। आर्थिक कठिनाइयों के होते हुए भी यह संस्था बहुत ही सराहनीय काम कर रही है और बरमा में बिखरे हुए भारतीयों को एक सूत्र में बांधने की प्रयत्न कर रही है।

बरमा में छोटी लाइन अर्थात् मीटर गेज है। पर गाड़ियां उन्नत ढंग की बनी हुई हैं। गाड़ी का दरवाज़ा ज़ोर से खींचने पर अपने आप बन्द हो जाता है। हाँ खोलने के लिये हत्था ऐंठना पड़ता है। गाड़ी के यात्रियों में अधिकांश बरमी लोग थे वैसे और जातियों के लोग भी थे। यहां एक अच्छी बात थी कि लोग घुसने वाले मुसाफ़िर को कभी मना नहीं करते थे चाहे भीड़ कितनी ही हो। जगह के लिये मैंने कभी झगड़ा होते नहीं देखा।

बरमी लोग भोग-विलास-प्रिय है इसलिये उनकी इस आदत से फायदा उठाने वाले गाड़ी में अपना अपना सौदा लेकर पीगू तक कोई न कोई व्यापारी सामान बेचने के लिये आता ही रहा। कभी रबड़ी मलाई की बरफ़, कभी भुनी हुई मच्छी, कभी दवाई, कभी मिठाई, कभी बिस्कुट, कभी आलपीन, कभी रूमाल, कभी पाकिट-बुक, कभी खिलौने आदि के बेचने वाले बारी बारी से अपनी अपनी आवाज़ें लगाते ही रहे। इनकी बिक्री तो तेज़ी से हुई ही, भीख मांगने वाले और गाना गाने वाले भी खाली हाथ न गये। मैंने अभी तक इस प्रकार आँख मींच कर खर्च करने वाले लोग नहीं देखे थे।

रंगून से उत्तर की ओर इस रेल यात्रा में कई मीलों तक समथल भूमि थी एक दो ताड़ के पेड़ तथा घरों को छोड़ सारा धरातल हरियाली का समुद्र था। अभी तो केवल घास था, धान कट गये थे। धानों के हरे होने पर यह दृश्य और भी सुहावना लगता है। इस समय गाय और बैलों के ढोर चरते थे। बहुधा इनका रंग लाल था। पर जितनी अधिक संख्या यहां ढोरों की होनी चाहिये उतनी न थी। शायद इसका कारण यह है कि बरमी लोग दूध पसन्द नहीं करते थे।। अब कुछ कुछ परिवर्तन हो रहा है।

हिन्दुस्तानियों के सहवास से हिन्दुस्तानी मिठाई, परावठे, रोटी आदि की ओर बरमी लोगों की रुचि बढ़ने लगी है। अगर हिन्दुस्तानी भाई घी, दूध, दही आदि के योग से बनाये हुए भोजन बरमा में लोकप्रिय करदें तो बरमी लोगों से मांस-मच्छी छुड़वाना बहुत ही सुगम होगा। लगभग २ घण्टे में पीगू पहुँच गया।
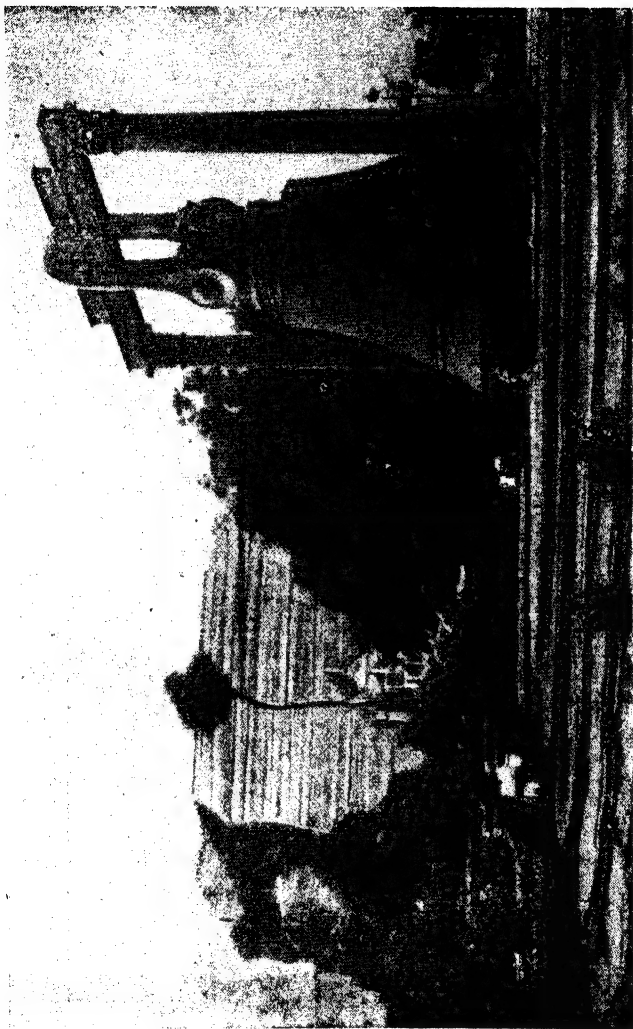
मिंगे का घंटा
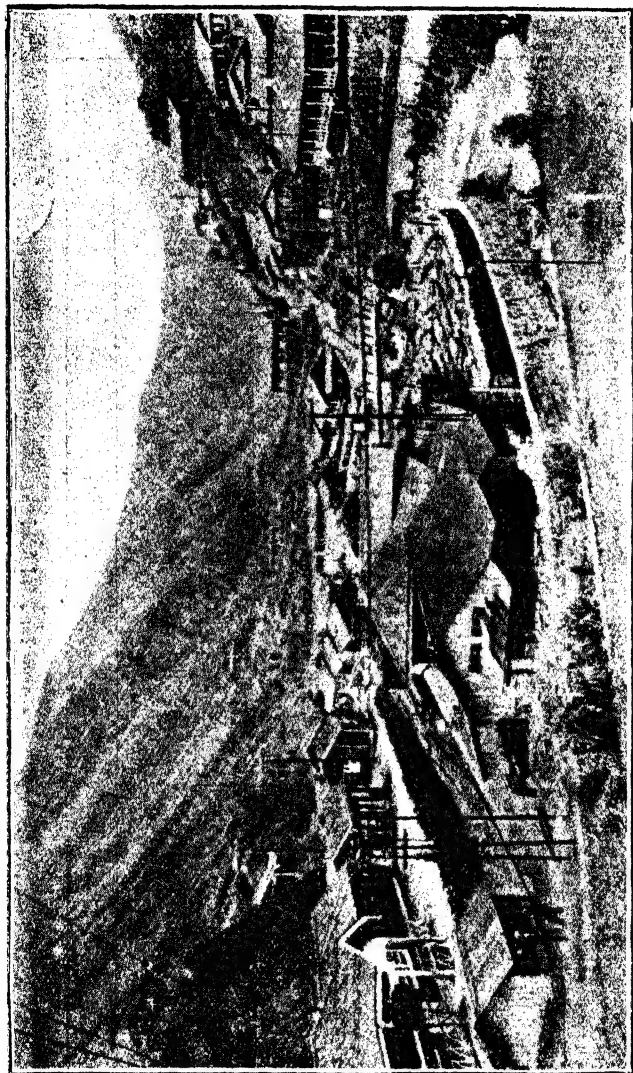
बाडविन की चाँदी की खान का एक दृश्य

मिट्टी के तेल के प्रदेश का एक दृश्य
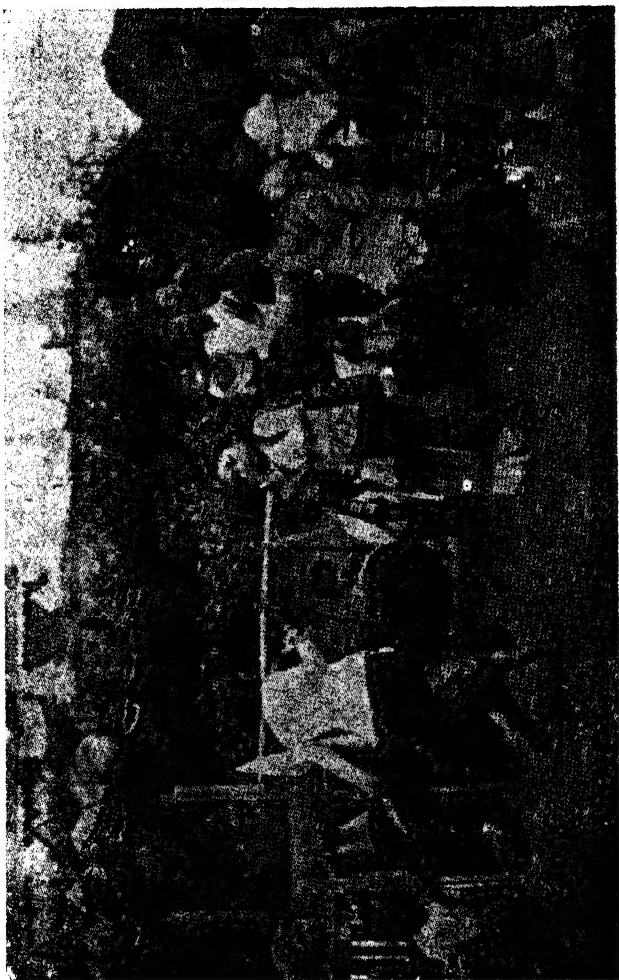
उत्सव का एक दृश्य

पेगू स्टेशन रंगून से बहुत छोटा है। इसमें कोई विशेषता दृष्टिगोचर नहीं होती। पर मौलमीन के लिये जंकशन यही है। स्टेशन से बाहर आकर मैंने ठाकुर बाड़ी का रास्ता लिया। अन-जान होने के कारण पहले मैं मद्रासी लोगों की ठाकुरबाड़ी में पहुँचा, वहाँ से फिर दूसरी ठाकुरबाड़ी को लौटा जहाँ पर पुजारी तथा और बहुत से लोग हिन्दी भाषा-भाषी थे। पनवाड़ी, हलवाई और बिसाती प्रायः सभी हिन्दुस्तानी हैं। मिलीटरी पोलिस में सब के सब या तो गौड़ ब्राह्मण थे या सिक्ख। ग्वाले, कुली और रिकशा वाले तो रंगून की भाँति यहाँ भी हिन्दुस्तानी ही थे। वैसे रंगून की अपेक्षा पेगू अधिक बरमी नगर प्रतीत होता है। हिन्दुस्तानी, चीनी कारीगर और कुछ अङ्गरेज अफसरों को छोड़ साधारण जनता बरमी ही है।

पेगू शहर इसी नाम की नदी के ऐसे भाग में बसा हुआ है जहाँ से बड़ी बड़ी नावें रंगून नदी में पहुँचती हैं। वहां से रंगून शहर में आना जाना होता है। इस स्थिति के कारण प्राचीन समय से लेकर अब तक पेगू एक प्रसिद्ध नगर रहा है। इस समय भी यहाँ ज़िले की कचहरी, हाई स्कूल, अस्पताल, पोस्टआफिस और सोयमेडो पगोडा प्रसिद्ध भवन हैं। पुराने समय में भारतीय कलिंग राजाओं ने सदियों तक यहाँ राज्य किया। पर बरमी लोगों से अक्सर युद्ध हुआ और संसार की और राजधानियों की भांति पेगू ने भी अनेक राजाओं को सिंहसानारूढ़ और सिंहासनच्युत होते देखा। अलौंगपाया राजा ने तो कलिंगों को समूल नष्ट करने का प्रयत्न किया। उनके कम चिह्न बचे। पर उनके उत्तरा-धिकारी बोदपाया ने १७८० ई० में इसकी फिर दशा सुधारी।

प्राचीन नगर वर्गाकार था। इसकी चहारदीवारी ४० फुट मोटी थी। बीच में सोयमेडो पगोडा था। यह पगोडा सवा तीन सौ फुट ऊँचा है और तैलैंगो की दृष्टि में बरमा के परमपूज्य पगोडों में से एक है। १९१७ के भूचाल से इसका ऊपरी शिखर गिर गया। पर उदार भक्तों ने चन्दा करके शीघ्र ही इसकी मरम्मत करवा ली। यह पगोडा स्टेशन से लगभग एक मील दूर है पर इसकी स्वर्ण-पत्र-मंडित उच्च चोटी बहुत दूर से दिखाई देती है। इसकी चहार दीवारी में चार बड़े बड़े फाटक हैं। दक्षिणी प्रधान फाटक से प्रवेश करते ही पुङ्गी विद्यार्थियों से भेंट होती है। रात को बिजली की रोशनी होती है। आर्द्र जलवायु के कारण इतने कीड़े पतंगे मर जाते हैं कि सवेरे को मूंग या तिलों का सा ढेर मालूम होता है। पहिले दूर से मैंने हरएक बिजली के खंभे के नीचे बड़े बड़े ढेर देख यही जाना कि फर्श पर कोई अन्न सुखाकर इकट्ठा किया गया है। धूपबत्ती की सुगन्ध और निर्मल पवन इस दुर्गन्धि को बहुत कुछ दबा रहे थे। पर यहाँ के हीरा, पन्ना और मरकत आदि बहुमूल्य पत्थरों से जड़े हुए स्वर्ण-छत्र, विशाल मूर्तियों, स्तूपों, चित्रों और अनेक सजावट के सामान से चकाचौंध होने पर यात्री को और बातों की ओर ध्यान देने का अवसर ही नहीं मिलता। इस मन्दिर के निर्माण के विषय में एक बार फिर हम अपने मित्र श्रीयुत हरिवदन शर्मा जी की अमूल्य पुस्तक "बरमी बोध" से निम्नलिखित भाग उद्धृत करते हैं :—

सोयमोडो पगोडा, पेगू स्टेशन से करीब आधा मील पूर्व की ओर है। यह मन्दिर जैसा ही बड़ा है वैसा ही सुन्दर भी। दूर से ही इसका गगन-भेदी शिखर दीख पड़ता है। इसके चारों

तरफ चहारदीवारी और चार फाटक बने हुए हैं। दक्षिण का फाटक प्रधान है। इसके दोनों तरफ़ विशाल सिंहमूर्तियां बनी हैं। मन्दिर की ऊँचाई ५५० हाथ और धरातल का क्षेत्रफल ५५० वर्ग हाथ है। मन्दिर का ऊपरी भाग सुवर्ण-पत्र से मढ़ा हुआ है। शिखर के ऊपर हीरा, पन्ना और मरकत आदि मूल्यवान पत्थरों से जड़ा हुआ एक विशाल सुवर्ण-क्षत्र है। इसको राजा 'खेमटा' ने बनवाया है। इसका आकार-प्रकार और कारीगरी रंगून के 'सोयडिगों' पगोडा से मिलता-जुलता है। हीरा, मोती और पन्ना आदि मूल्यवान पत्थरों से पूर्ण सुवर्ण के अस्सी कलशों को भूमि में स्थापित कर उनके ऊपर मन्दिर की नींव डाली गई है।

'सोयमेडो पगोडा' के निर्माण करने के विषय में यह कहावत मशहूर है कि—एक बार भगवान् बुद्धदेव किसी स्थान पर धर्मोपदेश करते थे, वहाँ बरमा निवासी 'सूलखला' और 'महाखला' नामक व्यापारी ने जो वाणिज्य, व्यापार के सम्बन्ध से भारत पधारे थे भगवान् बुद्धदेव का दर्शन किया। इनकी अलौकिक तेजस्विता और तेजपुञ्ज स्वरूप को देखकर वे दोनों सहोदर वणिक इनके अनन्य भक्त हो गये और चिरकाल तक श्रीचरणों की सेवा का लाभ उठाते रहे।

इनकी अतुलनीय भक्ति से भगवान् बुद्धदेव प्रसन्न हो बोले—"वत्स ! हम तुम्हारी भक्ति से संतुष्ट हुए, तुम वर मांगो।" इस प्रकार भगवान् की दयापूर्ण वाणी को सुनकर दोनों भाई अतीव प्रसन्न हो गद्गद् कण्ठ से बोले—प्रभो ! हम लोगों को धर्म्म में दीक्षित करें और आशीर्वाद दें कि आपके श्रीचरणों में हम

लोगों की सदैव प्रीति बनी रहे। हम लोग धन, मर्यादा, गौरव तथा सुकीर्ति कुछ नहीं चाहते, केवल आपकी कृपा की ही भिक्षा चाहते हैं। आपही हम लोगों के ध्यान हैं, आपही हम लोगों के ज्ञान हैं, आपही हम लोगों के स्वर्ग हैं और आपही हम लोगों की मुक्ति हैं। आपके सिवाय हम लोग कुछ नहीं जानते, और न जानने की इच्छा ही करते हैं।

महात्मा शाक्य मुनि ने इनकी अनन्य भक्ति को देखकर अपने मस्तक से दो बाल उखाड़ कर इन्हें दिये और 'हानथा पगोडा' पर्वत पर रखकर, इनकी पूजा करने का आदेश किया। इसके अनन्तर मणि-मय खचित सुवर्ण पात्र में रखकर, वे इन केशों की ७ दिन तक वहाँ ही विधिपूर्वक पूजा करते रहे। पुनः आज्ञा लेकर उस मणिमय खचित सुवर्ण पात्र सहित अपने देश को लौट आये। यह समाचार पाते ही दूर दूर के रहने वाले लोग पूजा करने के लिये यहां आने लगे। तत्कालीन राजा "थामनटा" यह समाचार पाते ही तत्काल वहाँ आ पहुँचे और भक्तिपूर्वक उन केशों की पूजा करने लगे। कुछ दिनों के पीछे थिनगापुर स्थान पर एक बहुत ही सुन्दर छोटा सा मन्दिर बनवाया गया, जिसमें इन केशों की स्थापना हुई।

यहाँ छोटे बड़े सभी आ-आकर उपासना करने लगे। कई वर्षों के बाद राजा ने बुद्धदेव के बताये हुए स्थान पर विशाल मन्दिर बनवाने का निश्चय किया।

नया वर्ष आरम्भ होते ही अर्थात् १ बैशाख को राजा की आज्ञानुसार थिनगापुर निवासी वहाँ से घड़ी-घण्टा और शङ्ख-सहनाई आदि विविध प्रकार के बाद्यों को बजाते, गाते बड़े समा-

रोह के साथ बुद्धदेव के बताये हुए स्थान की तरफ चल पड़े। थिनगापुर से चलकर उन्होंने 'मुहिमानडा' नामक स्थान पर ४ दिन निवास किया। इस घटना की यादगार में यहाँ 'सोनडोर्जा, नामक एक विशाल मन्दिर बनवाया गया, जो आज तक विद्यमान है। वहाँ से चलकर १४ दिन में वे अपने अभीष्ट स्थान 'हान्तोयाडि' पहुँचे। मार्ग में वे जहाँ जहाँ ठहरे थे वहीं वहीं मन्दिर बनवाये गये, जिनमें कई एक अब तक मौजूद हैं। राजा ने हान्तोयाडि पहुँच कर, ४ हाथ लम्बा, २॥ हाथ चौड़ा और ५ मन भारी सोने की पालना और सूलखला और महाखला वजन की, इनकी स्वर्ण मूर्तियाँ तथा अष्ट धातु का एक बल्ला बनवाया गया। भूमि में एक गर्त खोद-कर उसमें उन दोनों भाइयों की सुवर्ण मूर्तियाँ रक्खी गई और उन मूर्तियों के कन्धे पर उस बल्ले को रख कर उसमें यह पालना लटका दी गई। इसी पालने में मणिमय खचित सुवर्ण पात्र सहित वे केश रक्खे गये। इसके अनन्तर राजा ने अपने बहु-मूल्य रत्नजटित सिंहासन को और रानी ने हीरा जवाहिरों से जड़ी अपने मस्तक की कंघी को उस गर्त में स्थापित किया। तदनन्तर आये दूसरे पुरुषों ने भी अपनी शक्ति और श्रद्धा के अनुकूल हीरा मोती आदि रत्न वहाँ स्थापित किये। मोम आदि विविध रसायनिक द्रव्यों से बने हुए १० मन वज़न के २ दीपक* वहाँ रख कर एक सोने की मोटी चद्दर से गर्त का मुँह बन्द कर दिया

---

* इन दीपकों के विषय में लोगों की धारणा है कि, अब तक ये जलते हैं। इस प्रकार के दीप को चिरदीप कहते हैं। इन चिरद्वीपों का विश्वास बरमा वासी ही नहीं बल्कि संसार की प्रायः सभी जातियाँ

गया और इसी के ऊपर एक छोटा मन्दिर बनवाया गया। एक के बाद दूसरे जितने राजा हुये सभी इसको यथाक्रम ऊँचा करते गये।

प्रसङ्ग बश एक और ऐतिहासिक घटना जिसका भारतवर्ष के साथ सम्बन्ध है, यहाँ लिखी जाती है। दक्षिण भारत के चोल-वंशीय राजा राजेन्द्र चोला ने सन् १०२७ ई० में पेगू को विजय कर अपने आधीन किया था। इस विजय के स्मारक स्वरूप दो विजय स्तम्भ यहाँ स्थापित किये थे। ये स्तम्भ पत्थर के अठकोने बने हुए हैं। देखने से मालूम होता है कि अभी हाल में ही बनवाये गये हैं। करीव ९०० वर्ष वर्षा-धूप सहकर भी अभी तक लकालक चमक रहे हैं। हाथ रखने से मालूम होता है कि इस पर मक्खन लिपा हुआ है। आजकल बर्मा सरकार ने इन्हें पेगू कचहरी के हाते में छोटो चौकोर वेदियों पर स्थापित

इसपर विश्वास करती हैं। सुना जाता है कि पहले समय में हमारे देश के रहने वाले अनेक वैज्ञानिक पंडित इस प्रकार के दीपक बनाते थे, किन्तु वे अपनी अनुदारता और हृदय की संकीर्णता के वशीभूत हो, इस कला को किसी को बतला न सके और उनके इस नश्वर देह के साथ ही यह अलौकिक विद्या भी अलुप्त हो गई। इस चिर-प्रदीप की बात निर्मूल नहीं है। ईसा की १६ वीं शताब्दी में जर्मन का 'रोज़ि क्रसियम' नामक विद्वान् ने भी इसी प्रकार का चिरप्रदीप बनाया था। इंगलैंड भी छठें एडवर्ड के शासन-काल में 'कनष्टानसास' नामक एक व्यक्ति की क़ब्र खोदने पर जलता हुआ दीपक पाया गया था जो सूर्य्य के प्रकाश पाते ही बुझ गया। क़ब्र का हिसाब लगाने से मालूम हुआ था कि २०० वर्ष यह दीपक जलता रहा।

कराया है। इन वेदियों के मूल में सङ्गमरमर पत्थर पर अँगरेज़ी अक्षरों में खुदा हुआ साइनबोर्ड जड़ा गया है। इस साइनबोर्ड में उपरोक्त राजा का नाम और सन् आदि लिखा है। इन वेदियों के चारों तरफ़ जंजीरों का घेरा लगा है।

पेगू वास्तव में एक खुला हुआ उन्नतिशील नगर है। पर हम यहाँ के विविध फल, शाक-भाजी, मच्छी, फल और अनेक वस्तुओं से पूर्ण बाज़ार, काष्ठ निर्मित हवादार और फुलवाड़ीदार घरों, रिकशा दान (एक प्रकार लम्बा गड़ासा) चाँदी, पीतल और मिट्टी के बर्तन बनाने वाले मेहनती लोगों तथा कहीं कहीं रात भर नाच-गाना बजाना कर मस्त रहने वाले लोगों में अधिक समय न बिताकर जियाबाड़ी की ओर प्रस्थान करते हैं। पच्चीस वर्ष पहले रेलवे की खुदाई करते समय निकली हुई बुद्ध भगवान् की मूर्ति का भी दूर ही से दर्शन कर लेते हैं।

पेगू से सीधे मांडले न जाकर मैंने जियाबाड़ी के लिये ही सबेरे नौ बजे की गाड़ी से प्रस्थान किया। लगभग ६ घंटे में पहुँच गया। यह कोई प्राचीन और विशाल नगर नहीं है। ब्रिटिश विजय के पहले यहाँ जंगल ही जंगल था। बिहारी भाइयों ने आकर इसे हरा भरा कर दिया। इस छोटी सी हिन्दुस्तानी रियासत अथवा बड़ी ज़िमींदारी के साथ कई गाँव लगे हुए हैं। हिन्दुस्तानी उपनिवेश किस तरह के हो सकते हैं इसका यहाँ छोटा सा नमूना मिलता है।

स्थिति के अनुसार यहाँ के घर, बाज़ार, स्कूल, कुआँ, सड़क, हल, बैल आदि सभी चीज़ों पर हिन्दुस्तानी मुहर लगी है। सफाई और जाग्रति यहाँ के साधारण बिहारी नगर से कहीं अधिक

है। इन गाँवों में प्रायः सबके सब बिहारी भाई हैं। ऐसा जान पड़ता था मानों मैं बिहार में पहुँच गया। रियासत के मैनेजर साहब का नया महल सुन्दर व सुदृढ़ लकड़ी से बरमी ढङ्ग का बन रहा है। आपको बिहारी आसामी पितावत् मानते हैं। पर बरमी आसामी भी आप पर पूरा पूरा भरोसा करते हैं। आप बहुत सा रुपया अपनी प्रजा में विद्याप्रचारार्थ स्कूल पर खर्च करते हैं। स्कूल के शिक्षक भी आपको बहुत त्यागी और विद्याप्रेमी मिल गये हैं। शिक्षा मिडिल तक दी जाती है। हिन्दी को विशेष स्थान मिला है। वैसे तो अंगरेजी भी पढ़ाई जाती है। आपने भौगोलिक अनुसंधान से बड़ी सहानुभूति प्रगट की और "भूगोल" के ग्राहक भी सहर्ष बन गये। इन्हीं की रियासत में इतनी ईख होती है कि यहाँ का गुड़ बरमा के और भागों में भी बिकता है। दूसरे दिन इन मित्रों से बिदा हो यमेदिन का टिकट लिया। इस यात्रा में प्राकृतिक दृश्य धीरे धीरे बदलता जाता है। समतल धान के खेतों, ऊँचे नीचे कटीले और ढाई तीन हजार फुट ऊँचे पहाड़ दृष्टिगोचर होते हैं। ये सब पेड़ों से घिरे हैं। उधर से आने वाले चश्मे भी लट्ठों से भरे रहते हैं। ताड़, इमली, अमलतास, आम, जामुन, सुपारी, ढाक आदि के पेड़ अधितर सब कहीं पाये जाते हैं। नीम बहुत कम मिलता है। टौंगू के पास से स्पष्ट रूप से अपर बरमा के चिन्ह दिखाई देते हैं। टौंगू एक बड़ा शहर तथा रेलवे जङ्कशन है। लकड़ी का भी यह एक बड़ा केन्द्र है। सिटांग नदी में लट्ठों के ढेर रहते हैं। शहर से कुछ दूर नदी के उस पार बुद्ध भगवान् का पादचिन्ह है जहाँ हर साल मेला लगता है। यह शहर पहिले सोलहवीं सदी में एक राजा की

राजधानी था। पुराने क़िले के भग्नावशेष और खाई उसके प्रमाण हैं। झील, नया पगोडा, स्कूल, बंगले आदि अब भी इसकी शोभा को बढ़ा रहे हैं। आबादी बीस हज़ार के लगभग है।

पिनमिना के पास से गाँवों में बांस की कटीली चारदीवारी थी जो डाकुओं और जङ्गली जानवरों की सूचक थी। पहाड़ के कई भाग नंगे भी थे। खेती भी कहीं कहीं थे। यमेदिन पहुँचते ही रात के नौ बज गये। यहाँ एक सुन्दर ठाकुरबाड़ी भी थी, इसलिये यहीं रात बिताई। इस ठाकुरबाड़ी के पुजारी ने (जो फैजाबाद जिले के एक संस्कृतज्ञ पंडित थे) बड़ा ही अतिथि सत्कार किया। यहाँ के घर साधारण गाँव से हैं कुओं का अभाव है पानी के लिये बाहर कुछ दूर एक तालाब है जिसके चारों ओर डोल, बाल्टी, बहँगी और गाड़ी द्वारा पानी ले जाने वालों की पंक्ति लगी रहती है। तालाब का पानी साफ़ और मीठा है क्योंकि इसमें नहाना और मैले बर्तन डालना बिल्कुल मना है। दूसरे दिन स्नानादि से निपट तथा कुछ आम, केला और दूध से क्षुधा शान्त कर चल दिया। आगे देश सूखा है। पर्वत भी नग्न हैं। पर पगोडे इनकी चोटियों पर भी बने हैं। पेड़ों पर कॉंटेदार झाड़ियाँ हैं। खेत सूखे पड़े हैं। इनमें चार फलों वाला पटेला के समान हल चलता है। पर कुण्ड, तीन इंच से अधिक नहीं खुदता। थाजी में पास नहर खुद रही है। इस प्रदेश में जनसंख्या भी बहुत कम है मकई की अधिक उपज होती है। यह खाने के काम तो आती है पर इसके भुट्टों के पत्तों से लोग सिगरेट बनाते हैं।

ऐसे शुष्क और पहाड़ियों के प्रदेश में होता हुआ साढ़े बारह बजे मैं मिंगे पहुँच गया। यहीं मेरे मित्र पण्डित हरिवदन शर्म्मा जी

ठहरे हुए थे। अतः स्टेशन से उत्तर की ओर रेलवे कर्मचारियों के घरों की पंक्तियाँ गेरुआ खेतों के बीच में होता हुआ श्वेत ठाकुरवाड़ो में पहुँच गया। तन्दुरुस्ती के लिये यह स्थान बरमा भर में सबसे अच्छा गिना जाता है। पर यह प्रसिद्ध है आमों के लिये, यहाँ के आम बड़े ही स्वादिष्ट होते हैं और प्रायः सभी शहरों में पहुँचते हैं। यदि यहाँ से रेलवे स्टेशन और रेलवे बन-साल उठा दी जावे तो यहाँ कुछ भी न रहे। इस बन-साल में बरमा रेलवे की सारी गाड़ियाँ बनने और मरम्मत होने आती हैं। एक भाग में लोहे का सामान बनता है। तरह तरह के पुरजे मिनटों में तैयार हो जाते हैं। बढ़ई के कारखाने में मशीन के आरों से बड़े से बड़े लट्ठे बात की बात में चीर दिये जाते हैं। रंदाई और काट छांट के बाद वे जोड़ कर ठीक कर दिये जाते हैं।

मिंगे से मांडले तक दूरी केवल ९ मील है। इसका एक-एक मील ऐतिहासिक घटनाओं से भरा पड़ा है। मिंगे और मांडले के बीच प्रायः चार मील की दूरी पर अमरपुरा है। मिंगे से जाकर पुरानी चाल की ईंट की सड़कें, टूटे-फूटे पगोडा तथा विशाल झील पड़ती है। इसके ऊपर एक बड़ा लम्बा काठ का पुल है। यह पुल अब पुराना हो गया है। थोड़ी थोड़ी दूरी पर इसमें काठ की बुर्जियाँ हैं। इस पुल से नीचे उतरते ही अमरपुरा में प्रवेश होता है। अमरपुरा का निर्माण १७८७ ई० में बादपाया महाराज ने करवाया था। १८५२ ई० तक यही राजधानी रहा। इसी अवधि में इरावदी के समीप यहाँ विशाल फया, राजभवन, क़िला, खाईं, चारदीवारी आदि इस कोटि के बन गये कि वे अपनी जीर्णावस्था में भी प्राचीन गौरव की साक्षी देते हैं। कुछ मन्दिर तो बिल्कुल

नये से हैं। इस नगर में रेशम की बुनाई का खूब काम होता है प्रायः प्रत्येक घर में मैंने करघे पर कोई न कोई कपड़ा (लुङ्गी) अधबुना चढ़ा हुआ देखा। पुरानी चाल की बुनाई के अतिरिक्त यहाँ एक बुनाई का स्कूल भी है जो सान्डर्स सिल्क वीविंग के नाम से प्रसिद्ध है। पर यह कोई बड़ा नगर न रह सका, इसकी जनसंख्या इस समय केवल आठ हज़ार है। अमरपुरा में दूसरा स्टेशन अमरपुर घाट के नाम से प्रसिद्ध है जहाँ से यात्री और माल स्टीमर द्वारा नदी के दूसरे किनारे को जाते हैं। दूसरे किनारे पर उन्हें मिचीना अथवा मनीवा के लिये गाड़ी तैयार मिलती है।

१८२२ ई० में मिंगे और ऐरावती (इरावदी) के संगम पर स्थित आवानगरी में नई राजधानी बनी। १८३७ ई० में फिर राजधानी अमरपुर हो गई और बीस बरस तक रही। इस वर्ष फिर राजधानी यहाँ से उठकर मांडले चली गई।

मांडले नगर उस मैदान में बनाया गया जो शान पहाड़ियों से लेकर पूर्व में इरावदी नदी तक फैला हुआ है। समस्त शहर का क्षेत्रफल लगभग २५ वर्गमील है। असंख्य इमलियों की छाया से पूरित चौड़ी सड़कें एक दूसरे से समकोण बनाती हुई पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण को चली गई हैं। इनके दोनों ओर ईंट, टीन और लकड़ी के ऊँचे ऊँचे मकान हैं। जब मैंने रंगून से शांजू को ट्रैम से प्रस्थान किया तो सड़क पर भीड़ नहीं थी। पर बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी और मोटर भी सड़क पर साथ साथ चलते थे। बाहर के मकान बांस के बने हैं जो पुराने होने के कारण काले पड़ गये हैं। शहर खुला और हवादार है।

थोड़ी देर में फया के दरवाज़े पर पहुँच गया। फया के दरवाज़े पर काठ का काम बहुत ही मनोहर है। जगह जगह लकड़ी के खम्भे हैं। ऊपर से सुनहरा परत जड़ा है। इस महामुनि फया की छत पर भी सुनहरा काम है। यहाँ की मूर्ति को बरमी लोग बड़ी ही श्रद्धा से देखते हैं। बसन्त में यहाँ की मूर्ति, तालाब, घण्टे, पीत वस्त्रधारी पुङ्गी और सुगन्ध आदि एकदम धार्मिक भाव जाग्रत करते हैं।

सांजू से लौट कर दूसरे दिन मैंने राजमहल के दर्शन किये। दुनियाँ की राजधानियों के प्राचीन महलों की भाँति यह सारा महल काठ का बना हुआ है। बहुत सा भाग गिरा दिया गया है। फिर भी इसके निर्माता को इसे पहिचानने में कठिनाई न होगी। भिन्न भिन्न अवसरों के लिये भिन्न भिन्न राज-आसन काम में लाये जाते थे। बहुत सी सजावट जाती रही। पर अपने वैधव्य में भी यह यात्रियों को चकित कर देता है। मुझे महल दिखलाने का भार मेरे मांडले निवासी मित्रों ने लिया था जो बरमी भाषा में भी निपुण थे। भाग्य से एक ऐसे वृद्ध से भेंट हुई जो थीबा महाराज के समय में महल की नौकरी पर था। सारी राम कहानी सुनने के बाद मैंने उससे कहा कि प्रजा को शायद अँगरेज़ी राज में पहिले से कहीं अधिक आराम है। थीबा नाम सुनते ही उसकी आँखों में आँसू भर आये और उसने कहा कि पहिले हम सरीखे ग़रीबों की गुजर २ रु० महीने में हो जाती थी अब तो ७ रुपये में भी गुज़र नहीं होती।

यहीं पास ही में जेल थी जिसे लोकमान्य तिलक ने पवित्र किया था। उसका भी दर्शन करके पास में मांडले हिल पर चढ़ने को सोची। यह पहाड़ी बहुत पवित्र गिनी जाती है। बरमा के

परमपूज्य यूरवांटो नामक पुङ्गी महाराज ने कई लाख की लागत से इसमें कई नये मन्दिर, सीढ़ियाँ और छाया के लिये टीन लगवा दी हैं। धीरे धीरे करके एक मन्दिर से दूसरे मन्दिर में होता हुआ मैं चोटी पर पहुँच गया।

चोटी पर से सारा शहर यहां तक कि मिंगे की वर्क-शाप (कारख़ाना या बनसाल) की चिमनी का धुआँ जो यहाँ से दस मील दूर है दिखाई देता है। एक ओर शहर के मकान और पेड़ दिखाई देते हैं। इससे आगे बगीचे दृष्टिगोचर होते हैं। पहाड़ की तलहटी में इरावदी नदी बहती है। सामने क़िला और नहर है। क़िले के ऊँचे ऊँचे कंगूरे यहीं से झाड़ी के समान लगते हैं। दूसरी ओर बगीचे और बीच बीच में धान के खेत हैं।

फौंडाडो नामी बरमी मुहल्ला ठीक नीचे बसा है। एक सड़क चतैंजी को चली जाती है, दोनों ओर पहाड़ हैं। ताड़, इमली, बेरी आदि से दृश्य की मनोरमता और उपयोगिता बढ़ जाती है। आज पानी बरसने से कुछ कुछ बादल अब भी घिरे थे। वैसे यह शुष्क प्रदेश है। हवा के चलने से शिखर के ताम्रपत्र हिलते हैं। इससे मनोरम झनकार होती रहती है। सारा शहर बग़ीचा सा मालूम होता है। क़िला वर्गाकार है। सब कहीं थोड़ी थोड़ी दूर पर पगोडे हैं। लकड़ी की लाल लाल छतें भी उनके पास निकली हैं। चारों ओर शान्ति सी छाई है। इरावदी की दूसरी ओर सगाई और मिंगून तक दृष्टि जाती है।

दूसरे दिन नाव द्वारा मिंगून का विशाल घण्टाघर देखने के लिये मैंने प्रस्थान किया। इस घंटे का विवरण गत दिसम्बर मास के भूगोल में प्रकाशित हो चुका है। इस यात्रा का आनन्द अनु

भव से सम्बन्ध रखता है। नदी की उल्टी ओर नाव ले जाने में जो परिश्रम होता है उसे पाठक भली भांति जान सकते हैं। पर परिश्रमी बरमी मल्लाह इसके अभ्यस्त हैं। हाँ वे मज़दूरी पूरी लेते हैं। स्टीमर के पाल वाले मल्लाहों ने तो आने जाने के लिये पांच रुपये से कम लेना स्वीकार ही न किया इसलिये किनारे किनारे धोबी घाट और नाव के कारखानों के बीच में होता हुआ एक मील आगे बढ़ा वहाँ तीन रुपये में काम चल गया। एक आदमी को तीन रुपये मज़दूरी कुछ कम नहीं है। पर बरमी नौकर एक बार मेहनत कर लेते हैं। फिर जब तक पैसा रहता है ये मेहनत का नाम नहीं लेते। मेल आपस में पूरा है यदि घाट के एक मल्लाह ने कुछ दाम कह दिये तो दूसरा कभी न घटेगा।

यहाँ से लौटकर बाज़ार, शहर आदि से निपट मिचीना के लिये प्रस्थान किया।

मांडले से मिचीना

इस यात्रा में बहुत कम भीड़ रहती है। कभी कभी यहाँ ऐसी जातियाँ मिलती हैं जो भाषा और भेष-भूषा में बरमी लोगों से भिन्न हैं। इस ओर जंगल अधिक है, रेलवे-इंजन में भी लकड़ी जलाई जाती है। इसी से इधर के कई स्टेशनों में कोयले की जगह लकड़ी का टाल रहता है। मिचीना बहुत ही छोटा नगर है। मौनी बाबा की कुटी एकदम इरावदी नदी के किनारे बनी है। नदी यहाँ की इतनी चौड़ी है कि सरकारी स्टीमर यहाँ तक आ सकते हैं। कुछ लोग नदी की बालू को साफ़ कर उसमें से सोने के कण निकालते हैं। नगर के चारों ओर जंगल है। इस जंगल में सागौन के पेड़ बड़े मूल्यवान हैं। लेकिन इस जंगल को स्टील

ब्रदर एण्ड कम्पनी नाम की एक अंगरेजी कम्पनी ने मोल ले लिया। इसी से जगह जगह पर इस कम्पनी का साइनबोर्ड टंगा हुआ मिलता है। मिचीना से लौटकर मैं ने कथा नगर का टिकट लिया। यहाँ से भामो को स्टीमर जाता है, यह स्टीमर की यात्रा बड़ी मनोहर है। एक स्थान पर नदी को घेरने वाली पहाड़ियाँ पास पास आ गई हैं और नदी की धार बहुत तङ्ग हो गई है। भामो नगर एक प्रकार से बरमा का सीमा प्रान्तीय नगर है। यहाँ बरमी लोगों के अतिरिक्त शान और चीनी लोग भी बसे हुए हैं। चीनी लोगों का मुहल्ला अलग है। यहाँ इस समय भी छोटे पैर वाली चीनी स्त्रियाँ मिलेंगी। इस भाग में चीनी मन्दिर बड़ा पुराना और विचित्र है। भामो में कुछ हिन्दू लोग भी बसे हुये हैं। इनका मन्दिर और ठाकुरबाड़ी एक दम नदी के किनारे है, इसके पास ही स्टीमर ठहरता है।

चीन और पड़ोस के पहाड़ी भागों से व्यापार करने वालों का बैलों का काफिला नगर के बाहर ठहरता है। बोझा बैलों की पीठ पर लादा जाता है। इनकी गर्दन पर छोटा घंटा बंधा रहता है। इसलिये काफले के ठहरने के स्टेशन और मार्ग में बराबर सङ्गीत होता रहता है।

भामो से कुछ ही मील की दूरी पर भामो एक छोटा गाँव है। यहाँ गरम पानी के चश्मे प्रसिद्ध हैं। वास्तव में यहाँ एक छोटी नदी है। नदी के चपटे किनारों पर राख के समान काली मिट्टी है। ऊपर पानी ठंढा है। लेकिन मिट्टी खोदकर यदि नीचे का पानी निकाला जावे तो यह गरम निकलता है। अक्सर लोग इस गरम पानी को लोटे में भर कर और नदी के ठंढे पानी में मिलाकर

नहाते हैं। यहाँ से आगे चीन के लिये मार्ग मिल गया है। सड़क के दोनों ओर घना जंगल है। ऊँचे नीचे रास्ते में कहीं कहीं पर गाय, बैलों के झुण्ड मिलते हैं। एक झुण्ड से मेरी बाइसिकिल टकरा गई। जब साइकिल गिरी तब यह इधर उधर चौंककर भागे। मुझे लौटने की जल्दी थी, इसलिये मैं साइकिल उठाकर आगे बढ़ा। भामो से लौटते समय एक दुर्घटना बाल बाल बच गई। इरावदी के स्टीमर प्रायः दिन में ही चलते हैं। उनके ठहरने के स्थान (घाट) नदी के किनारे बने हैं। लेकिन नगर जिनके नाम से घाट प्रसिद्ध है नदी से काफ़ी दूर बसे हुये हैं। ऐसे ही एक घाट पर स्टीमर लगभग तीसरे पहर को ही ठहर गया। दूसरे दिन प्रातःकाल को यह छूटने वाला था। अतः मैं पास वाले नगर में कुछ सामान मोल लेने चला गया, लौटते समय एक मोटा सांप कच्ची लीक (नीची सड़क) के एक सिरे से दूसरे सिरे तक घेरे हुए पड़ा था। कुछ देर तक मैं ठहरा, फिर मैंने साँप के पीछे की ओर से आगे बढ़ने की सोची, इतने में वह आगे की ओर बढ़कर सामने की झाड़ियों में घुस गया।

मांडले से लाशियो की रेलयात्रा भी कम मनोहर नहीं है। लाशियो बहुत ही छोटा नगर है। इसी के पास बाडविन नगर के समीप चाँदी की खान है। मेमियो अधिक बड़ा नगर है, अधिक ऊँचाई पर स्थित होने के कारण यह कुछ शीतल रहता है। इसीसे गर्मियों में बरमा के सरकारी कर्मचारी और धनी लोग यहीं सैर करने चले आते हैं। सीपा दूसरा प्रसिद्ध स्थान है, यह एक शान राज्य का प्रधान नगर है।*

---

* बरमा की यह यात्रा १६२४ के मई-जून में की गई थी—सम्पादक।

१७—यूगोस्लेविया, १८—ग्रीस, १९—इटली, २०—स्पेन, २१—पुर्तगाल, २२—जर्मनी, २३—हंगारी, २४—स्वीज़रलैंड, २५—चेकोस्लोवेकिया, २६—अल्सेस लारेन ।

अफ्रीका—१—मिस्र, २—सूडान, ३—एबीसीनिया, ४—जेंजीबार और पम्बा, ५—मेडेगास्कर, ६—कीनिया ७—यूगांडा, ८—पूर्वी पुर्तगाली अफ्रीका, ९—बेल्जयन कांगो, १०—रोडेशिया, ११—दक्षिणी अफ्रीका, १२—पश्चिमी पुर्तगाली अफ्रीका, १३—नाइजीरिया, १४—सहारा, १५—मरक्को, १६—अल्जीरिया, १७—ट्यूनिस, १८—ट्रिपली, १९—लाइबेरिया, २०—मारीशस द्वीप ।

उत्तरी अमरीका—१—कनाडा, २—न्यूफाउंडलंड; ३—संयुक्त राष्ट्र अमरीका, ४—मेक्सिको, ५—पनामा, ६—मध्य अमरीका, ७—पश्चिमी द्वीपसमूह ।

दक्षिण अमरीका—१—कोलम्बिया, २—गायना, ३—वेनिज़ुवेला, ४—इक्वेडार, ५—पीरू, ६—बोलिविया, ७—चिली, ८—पेरेग्वे, ९—यूरुग्वे, १०—ब्रेज़ील, अर्जेन्टाइना ।

आस्ट्रेलिया—१—आस्ट्रेलिया, २—टस्मेनिया, ३—न्यूज़ीलैंड, ४—न्यूगिनी, ५—फिजी द्वीप, ६—प्रशान्त महासागर के द्वीप ।

अन्वेषक—१—मार्कोपालो, २—कोलम्बस, ३—वास्को डिगामा, ४—कुक, ५—लिविंगस्टन, ६—स्टैनली, ७—ड्रेक, ८—स्वेन हेडिन, ९—लारेंस, १०—पियरी, ११—नान्सेन ।

नगर—१—प्रयाग, २—कलकत्ता, ३—बम्बई, ४—बनारस, ५—मद्रास, ६—लाहौर, ७—लन्दन, ८—पेरिस, ९—बर्लिन, १०—मास्को, ११—न्यूयार्क, १२—टोकियो, १३—बग़दाद, १४—क़ाहिरा, १५—यरूशलम, १६—मक्का, १७—पेकिंग १८—हांगकांग ।

नदी—गंगा, यमुना, सिन्ध, नर्मदा, गोदावरी, महानदी, ब्रह्मपुत्र, इरावदी, यांग्ज़ी, ह्वांग हो, अमूर, दजला-फरात, वाल्गा, राइन, डेन्यूब, मिसीसिपी, एमेज़न, नील, कांगो, सेन्ट लारेंस ।

पर्वत—हिमालय, अल्प्स, एँडीज, राकी ।

नहर—स्वेज़, पनामा, चीन की शाही नहर (ग्रांड केनाल) ।

कारबार—कागज़, लोहा, दियासलाई, मोटर, पेन्सिल, मिट्टी का तेल, पुतलीघर, जहाज़, रेल, हवाई जहाज़ ।

सभ्यता—वैदिक, एसीरियाई, प्राचीन मिस्री, इन्का, माया, यूनानी, रोमन ।

अग्रिम मूल्य एक प्रति का ।=), वार्षिक ४)रु०, समस्त पुस्तक माला का ४०)रु० ।